उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

जनवरी-मार्च, 2013

निर्णय-सूची

पृष्ठ संख्या

अंचना कुमारी (श्रीमती) **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य 166

अंजना महेन्द्रू **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य और एक अन्य 157

उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** रघुराज सिंह और अन्य 49

कमांडेंट, सातवीं बटालियन आर. ए. सी., भरतपुर और अन्य **बनाम** श्री गोविन्द सहाय व्यास और अन्य 94

किरन देवी (श्रीमती) और अन्य **बनाम** श्री पी. एन. हांडा और अन्य 90

कुलदीप कुमार **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य 128

केरल राज्य और अन्य **बनाम** लिली जार्ज और अन्य 69

गंगा बिशन गुर्जर और अन्य **बनाम** रूप नारायण जाट और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 104)

दया कौर **बनाम** भारत संघ, रक्षा मंत्रालय और अन्य 73

नवाब मोटर्स (मैसर्स) **बनाम** मैसर्स मैटल फेब इंडस्ट्रीज प्रा. लि. 31

पद्मा देवी (श्रीमती) और अन्य **बनाम** सोमा देवी (श्रीमती) 113

मनीषा और अन्य **बनाम** रूप नारायण जाट और अन्य 104

मोहम्मद नाज़िम और अन्य **बनाम** जिला मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद और एक अन्य 1

रफीकुन्निसा **बनाम** कलक्टर/जिला मजिस्ट्रेट, देवरिया और अन्य 65

राजेन्द्र प्रसाद शर्मा **बनाम** (श्रीमती) प्रतिभा रानी शर्मा 53

राधा स्वामी सत्संग सभा और अन्य **बनाम** अमी अधार सिंह और अन्य 13

	पृष्ठ संख्या
राम दरस यादव **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	26
शर्मिला कुमारी (सुश्री) **बनाम** माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर और एक अन्य	99
शांति देवी (श्रीमती) **बनाम** हनीफ	35
श्री गोविन्द सहाय व्यास और अन्य **बनाम** श्री भीम सिंह और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 94)	
संतोष कुमार **बनाम** अपर जिला मजिस्ट्रेट वित्त एवं राजस्व, बिजनौर और अन्य	42
संधूर सिंह **बनाम** जम्मू-कश्मीर विशेष अधिकरण और अन्य	79
हैड कांस्टेबल होशियार सिंह **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य	110

लेख

विकास, सुरक्षा एवं मानवाधिकार : एक संतुलित पहल की आवश्यकता	(1) – (4)

जनवरी-मार्च, 2013 (संयुक्तांक)

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक
महमूद अली ख़ां

महत्वपूर्ण निर्णय

संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 का 14) – धारा 58 – कृषि भूमि – बंधक – विक्रय-विलेख द्वारा अन्तरण – नामांतरण पर आक्षेप – ऐसी किसी भूमि को भी जो बंधक हो, विक्रीत किया जा सकता है तथापि, ऐसी भूमि बंधककर्ता के बंधकाधीन मानी जाएगी जब तक कि ऐसे बंधक का विमोचन न करा लिया गया हो ।

रफीकुन्निसा बनाम **कलक्टर/जिला मजिस्ट्रेट, देवरिया और अन्य** 65

पृष्ठ संख्या 1 – 172 **(2013) 1 सि. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

संपादक-मंडल

श्री पी. के. मल्होत्रा,
सचिव, विधायी विभाग

श्री एन. एल. मीना,
अपर सचिव (प्रशा.), विधायी विभाग

श्री आर. डी. मीना, संयुक्त सचिव,
राजभाषा खंड

डा. बी. एन. मणि, अधिवक्ता,
(पूर्व संपादक) वि.सा.प्र.

डा. प्रीती सक्सेना, प्रोफेसर,
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ

डा. वैभव गोयल, संकायाध्यक्ष
विधि संकाय, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ

श्री सुरेन्द्र शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, गुरु गोविद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय, दिल्ली

डा. आर. पी. सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव,
राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री के. जी. अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली खां,
संपादक

श्री जुगल किशोर,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पाण्डेय,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, एम. पी. सिंह, जसवन्त सिंह और बी. के. भटनागर

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 36

वार्षिक : ₹ 135

© 2013 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमश: चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ को पाठकों की सुविधा के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वाशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका – जनवरी-मार्च, 2013 (संयुक्तांक) (पृष्ठ संख्या 1 – 172)

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

आय-कर अधिनियम, 1961

– धारा 15, 19 और 192 – सरकारी कर्मचारी – महंगाई भत्ता – भागतः भविष्य निधि खाते में जमा करना – आय-कर – महंगाई भत्ते के भुगतान पर स्रोत पर कर की कटौती – विधिमान्यता – यद्यपि सरकार धारा 192 के निबंधनों में महंगाई भत्ते के भुगतान को उसके भविष्य निधि खाते में जमा कर सकती है तथापि, सरकार कर्मचारियों के खाते में नियमित वेतन के भुगतान के रूप में महंगाई भत्ते की बकाया के भुगतान पर कर की वसूली नहीं कर सकती ।

केरल राज्य और अन्य बनाम **लिली जार्ज और अन्य** 69

आयुध नियम, 1962

– नियम 25 – आयुध व्यवहारी अनुज्ञप्ति – नियमों के उल्लंघन के आधार पर रद्दकरण – प्राधिकारियों द्वारा रद्दकरण का आदेश पारित करने से पूर्व व्यवहारी को कारण बताओ सूचना जारी किया जाना – व्यवहारी द्वारा नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के अतिक्रमण की दलील – विधिमान्यता – जहां प्राधिकारियों द्वारा कारण बताओ सूचनाएं जारी करके स्पष्टीकरण का समुचित अवसर दिया गया हो वहां सुनवाई के नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के अतिक्रमण की दलील स्वीकार नहीं की जा सकती – अतिरिक्त अवसर देना उपर्युक्त सिद्धांत को विस्तारित करना होगा ।

मोहम्मद नाज़िम और अन्य बनाम **जिला मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद और एक अन्य** 1

उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड नियम, 1998

– नियम 12 और 14 – प्राध्यापक के रूप में प्रोन्नति –

पृष्ठ संख्या

सक्षम प्राधिकारी द्वारा पांच वर्ष के पश्चात् अनुमोदन – भूतलक्षी प्रभाव से फायदे दिए जाने के लिए दावा – इस संबंध में किसी नियम में कोई उपबंध न किया जाना – याची को किसी प्रतिकूल नियम के अभाव में कल्पित प्रोन्नति का फायदा प्रदान नहीं किया जा सकता – याची युक्तियुक्त समय के भीतर न्यायालय में समावेदन कर सकता था ।

राम दरस यादव बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** 26

उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किराए पर देने, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 (1972 का 13)

– धारा 16(1)क, 16(2) और 21(1)(क) – किराएदारी – मकान-मालिक की वास्तविक और सद्भाविक आवश्यकता के आधार पर निर्मुक्ति के लिए आवेदन – 6 मास की पूर्व सूचना न देने संबंधी आक्षेप – जहां किराएदार को भवन खाली करने के लिए युक्तियुक्त अवसर प्राप्त हो गए हों वहां मात्र इस आधार पर कि मकान-मालिक ने 6 मास की पूर्व सूचना नहीं दी थी, किराएदार को उपबंध का फायदा नहीं दिया जा सकता ।

राजेन्द्र प्रसाद शर्मा बनाम **(श्रीमती) प्रतिभा रानी शर्मा** 53

जम्मू-कश्मीर भूमि सुधार अधिनियम, 1976 (1976 का 17)

– धारा 4 और 7(2)(ङ) और 8 – कृषि भूमि किराए पर देना – भूमि का 1971 से पूर्व विक्रय – पुनर्ग्रहण का अधिकार – जहां किसी स्वामी द्वारा अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात् भूमि का विक्रय कर दिया गया हो वहां

पृष्ठ संख्या

ऐसा स्वामी धारा 7(2)(ङ) के निबंधनों के अधीन भूमि का कब्जा पुनः प्राप्त नहीं कर सकता ।

संधूर सिंह बनाम **जम्मू-कश्मीर विशेष अधिकरण और अन्य** 79

जम्मू-कश्मीर संविधान, 1957

– अनुच्छेद 103 [सपठित गृह मंत्रालय, भारत सरकार का तारीख 16 मई, 1964 का पत्र सं. एफ.-6/19-63 और सेना आदेश सं. 380/60 तथा सेना नियम 13-II(iii)] – सेना सेवा – चिकित्सीय रूप से अयोग्य होने के कारण सेवा से निर्मोचन – सेवोन्मुक्त सिपाही को उपदान आदि का संदाय किया जाना – सिपाही की विधवा पत्नी द्वारा 40 वर्षों के पश्चात् पेंशन के निदेश के लिए रिट याचिका – याची को कोई अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता ।

दया कौर बनाम **भारत संघ, रक्षा मंत्रालय और अन्य** 73

पंजाब पुलिस नियम, 1934

– नियम 13.19 और 13.21 – वीरता पदक – बिना बारी के प्रोन्नति की मांग – नियमों में शिथिलीकरण की अपेक्षा – विभाग द्वारा अनुपयुक्त पाया जाना – याचिका – शिथिलीकरण खंड वैवेकिक है – अतः ऐसे अनुतोष के लिए आदेश जारी नहीं किया जा सकता ।

हैड कांस्टेबल होशियार सिंह बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य** 110

भू-जोतों पर अधिकतम सीमा अधिरोपण अधिनियम, 1960

– धारा 13-क – अधिकतम सीमा – निर्धारण –

पृष्ठ संख्या

आदेश में गलती से असिंचित भूमि को सिंचित माना जाना – धारा 13-क के अधीन केवल गणितीय या लिपिकीय त्रुटि को ही सुधारा जा सकता है – चूंकि धारा पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदत्त नहीं करती इसलिए अपील न्यायालय भूमि के सिंचित या असिंचित होने की प्रकृति के बारे में पुनः विचार नहीं कर सकता ।

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम **रघुराज सिंह और अन्य** 49

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 163-क – मोटर दुर्घटना – मृतक द्वारा जिप्सी में यात्रा – ट्रक से टक्कर – मृत्यु – प्रतिकर के लिए दावा – दुर्घटना में अन्तर्वलित यान का पता न लगना – इस बात से कोई अन्तर नहीं पड़ता कि टक्कर मारने वाले यान का पता नहीं लगाया जा सका – उस जिप्सी का स्वामी, बीमा कंपनी और चालक प्रतिकर के लिए दायी समझे जाएंगे – अतः जिप्सी के स्वामी, बीमा कंपनी और चालक से प्रतिकर वसूल किया जा सकता है ।

कमांडेंट, सातवीं बटालियन आर. ए. सी., भरतपुर और अन्य बनाम **श्री गोविन्द सहाय व्यास और अन्य** 94

– धारा 163-क – मोटर दुर्घटना दावा – लोक अदालत में पक्षकारों के बीच समझौते पर चर्चा – लोक अदालत में मामले का निपटान न होना – अधिकरण द्वारा मृतक की आयु और आय को दृष्टिगत करते हुए तथा लोक अदालत में पक्षकारों के बीच अनंतिम समझौते को दृष्टिगत करते हुए अधिनिर्णय दिया जाना – चुनौती – ऐसे अधिनिर्णय को पूर्णतया अनुचित या अनुपयुक्त नहीं कहा जा सकता – अतः अधिनिर्णय की पुष्टि की जा सकती है ।

किरन देवी (श्रीमती) और अन्य बनाम **श्री पी. एन. हांडा और अन्य** 90

पृष्ठ संख्या

– धारा 163-क और 173 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – मृतक की नोशनल आय 15,000/- रुपए वार्षिक मानते हुए 15 का गुणक लागू किया जाना – जहां निचले न्यायालय द्वारा विधिक अपेक्षाओं का अनुपालन किया गया हो वहां पारित निर्णय में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है ।

मनीषा और अन्य बनाम **रूप नारायण जाट और अन्य** 104

रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का 16)

– धारा 33, 40 और 47-क – दस्तावेज का रजिस्ट्रीकरण – सम्पत्ति का बाजार मूल्य – स्टाम्प शुल्क – रजिस्ट्रीकरण प्राधिकारियों द्वारा संपत्ति मुख्य मार्ग पर होने के आधार पर अधिक स्टाम्प की मांग – सम्पत्ति के बाजार मूल्य के निर्धारण में अन्य कारकों पर विचार न किया जाना – मात्र संपत्ति के स्थान के आधार पर बाजार मूल्य का निर्धारण करना उचित नहीं है – बाजार मूल्य के निर्धारण में अन्य कारकों यथा संपत्ति की अवस्था, किराएदारों का कब्जा आदि पर भी विचार किया जाना चाहिए ।

संतोष कुमार बनाम **अपर जिला मजिस्ट्रेट वित्त एवं राजस्व, बिजनौर और अन्य** 42

संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 का 14)

– धारा 58 – कृषि भूमि – बंधक – विक्रय विलेख द्वारा अन्तरण – नामांतरण पर आक्षेप – ऐसी किसी भूमि को भी जो बंधक हो, विक्रीत किया जा सकता है तथापि, ऐसी भूमि बंधककर्ता के बंधकाधीन मानी

पृष्ठ संख्या

जाएगी जब तक कि ऐसे बंधक का विमोचन न करा लिया गया हो ।

रफीकुन्निसा बनाम **कलक्टर/जिला मजिस्ट्रेट, देवरिया और अन्य** 65

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 14, 16 और 226 – नियुक्ति – प्रोन्नति – विभागीय परीक्षा का फायदा – ऐसा फायदा न देकर कनिष्ठों को पहले प्रोन्नत किया जाना – जहां किसी कर्मचारी ने विभागीय परीक्षा उत्तीर्ण करके अन्यों के मुकाबले अर्हता प्राप्त कर ली हो वहां आरम्भिक काडर को विचार में न लाते हुए कर्मचारी को प्रोन्नति के लिए विभागीय परीक्षा का फायदा दिया जाना चाहिए ।

अंजना महेन्द्रू बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य और एक अन्य** 157

– अनुच्छेद 72, 161 तथा 226 – माननीय राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराए गए किसी व्यक्ति को क्षमादान प्रदान करना – अभियुक्त की दोषसिद्धि और भोगे गए दंडादेश तथा अनभोगे दंडादेश पर प्रभाव – यदि माननीय राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराए गए किसी व्यक्ति को क्षमादान प्रदान किया जाता है तो उसके परिणामस्वरूप अभियुक्त व्यक्ति की दोषसिद्धि और भोगे गए दंडादेश का क्षमादान नहीं होता है अपितु अभियुक्त द्वारा आगे भोगे जाने वाले दंडादेश का ही क्षमादान होता है जिसके परिणामस्वरूप उसके अनभोगे दंडादेश का निलम्बन, परिहार या लघुकरण हो सकता है ।

कुलदीप कुमार बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य** 128

पृष्ठ संख्या

– अनुच्छेद 226 – अध्यापक पात्रता परीक्षा – याची द्वारा उत्तर पुस्तिका में गलत शृंखला का उल्लेख करने के कारण परिणाम प्रभावित होना – याचिका – जहां गलती अनभिज्ञता के कारण की गई हो वहां गलती को सुधारने पर पुनः मूल्यांकन का आदेश देना उचित होगा ।

शर्मिला कुमारी (सुश्री) बनाम **माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर और एक अन्य** 99

– अनुच्छेद 226 [सपठित आयुध अधिनियम, 1959 – धारा 82 और आयुध नियम, 1962 का नियम 25 (2)] – आयुध व्यवहारी अनुज्ञप्ति – विनिर्माता का चिह्न उत्कीर्ण करने की अपेक्षा – व्यवहारी द्वारा बिना चिह्न के आयुध क्रय करके विक्रीत किया जाना – प्राधिकारियों द्वारा नियमों के भंग के आधार पर अनुज्ञप्तियों का रद्दकरण – अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका में आदेशों को चुनौती – जहां व्यवहारी द्वारा नियमों या कानूनी उपबंधों का अतिक्रमण किया गया हो वहां प्राधिकारी अनुज्ञप्ति रद्द करने के लिए सक्षम है – रिट याचिका स्वीकार नहीं की जा सकती ।

मोहम्मद नाज़िम और अन्य बनाम **जिला मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद और एक अन्य** 1

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– धारा 96 सपठित आदेश 1 नियम 8(6) – अपील – व्यक्ति विशेष की समाधि स्थल पर जाने और वहां पूजा-अर्चना करने के अधिकार का दावा करना – समुदाय के एक बड़े समूह को एक साथ वहां जाने और पूजा-अर्चना करने की अनुमति नहीं देना – विधि और व्यवस्था बाधित होने की आशंका होना – यदि विधि

पृष्ठ संख्या

और व्यवस्था बाधित होने की आशंका को देखते हुए किसी बड़े समूह के व्यक्तियों को किसी व्यक्ति विशेष की समाधि स्थल पर जाने और वहां पूजा-अर्चना करने की अनुमति नहीं दी जाती है तो ऐसा आदेश युक्तियुक्त और विधिमान्य होगा क्योंकि इससे उनके किसी भी मूल अधिकार का हनन नहीं होता है ।

राधा स्वामी सत्संग सभा और अन्य बनाम **अमी अधार सिंह और अन्य** 13

– धारा 100 [सपठित रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 58 और 60] – द्वितीय अपील – विक्रय-विलेख का निष्पादन – प्रतिफलरहित होना – कपट और असम्यक् प्रभाव के अधीन निष्पादन – यदि यह साबित कर दिया जाता है कि विक्रय-विलेख प्रतिफलरहित है तथा इसे कपट एवं असम्यक् प्रभाव के अधीन निष्पादित कराया गया है तो उसे प्रथमदृष्ट्या ही अभिखण्डित कर दिया जाएगा – उसका कोई विधिक प्रभाव नहीं होगा और इसे विधि में कायम नहीं रखा जा सकेगा ।

पद्मा देवी (श्रीमती) और अन्य बनाम **सोमा देवी (श्रीमती)** 113

– आदेश 9, नियम 13 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 – धारा 5] – सिविल वाद – एकपक्षीय निर्णय और डिक्री – एक वर्ष आठ मास के पश्चात् एकपक्षीय डिक्री को अपास्त करने के लिए आवेदन – खारिजी – एकपक्षीय आदेश को अपास्त करने के लिए आवेदन युक्तियुक्त अवधि के भीतर फाइल किया जाना चाहिए – जहां अस्पष्टीकृत अत्यधिक विलंब से आवेदन फाइल किया गया हो वहां न्यायालय द्वारा आवेदन की खारिजी को अनुचित या अनियमित या मनमाना नहीं कहा जा सकता ।

शांति देवी (श्रीमती) बनाम **हनीफ** 35

पृष्ठ संख्या

– आदेश 9, नियम 3 और 4 तथा धारा 151 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 – धारा 5] – व्यतिक्रम के आधार पर वाद की खारिजी – धारा 5 के आवेदन के साथ प्रत्यावर्तन आवेदन – मंजूरी – रिट याचिका में मंजूरी आदेश को आक्षेपित किया जाना – न्यायालय को आदेश वापस लेने का विवेकाधिकार प्राप्त है – अतः ऐसे आदेश को अवैध और मनमाना नहीं माना जा सकता – याची गुण-दोष के आधार पर मामले का विरोध कर सकता है ।

नवाब मोटर्स (मैसर्स) बनाम **मैसर्स मेटल फेब इंडस्ट्रीज प्रा. लि.** 31

हिमाचल प्रदेश आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और सहायक भर्ती स्कीम, 2007

– खंड 7.2(ख)2 – आंगनवाड़ी कार्यकर्ता का चयन – अनुभव के लिए अंक – स्कीम में सरकारी विद्यालय या सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालय के अनुभव का उल्लेख न होना – प्राइवेट विद्यालय से अनुभव प्राप्त अभ्यर्थी को स्कीम का फायदा देने से इनकार नहीं किया जा सकता ।

अंचना कुमारी (श्रीमती) बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य** 166

मोहम्मद नाज़िम और अन्य

बनाम

जिला मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद और एक अन्य

तारीख 4 अगस्त, 2010

न्यायमूर्ति संजय मिश्रा

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 [सपठित आयुध अधिनियम, 1959 – धारा 82 और आयुध नियम, 1962 का नियम 25(2)] – आयुध व्यवहारी अनुज्ञप्ति – विनिर्माता का चिह्न उत्कीर्ण करने की अपेक्षा – व्यवहारी द्वारा बिना चिह्न के आयुध क्रय करके विक्रीत किया जाना – प्राधिकारियों द्वारा नियमों के भंग के आधार पर अनुज्ञप्तियों का रद्दकरण – अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका में आदेशों को चुनौती – जहां व्यवहारी द्वारा नियमों या कानूनी उपबंधों का अतिक्रमण किया गया हो वहां प्राधिकारी अनुज्ञप्ति रद्द करने के लिए सक्षम है – रिट याचिका स्वीकार नहीं की जा सकती ।

आयुध नियम, 1962 – नियम 25 – आयुध व्यवहारी अनुज्ञप्ति – नियमों के उल्लंघन के आधार पर रद्दकरण – प्राधिकारियों द्वारा रद्दकरण का आदेश पारित करने से पूर्व व्यवहारी को कारण बताओ सूचना जारी किया जाना – व्यवहारी द्वारा नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के अतिक्रमण की दलील – विधिमान्यता – जहां प्राधिकारियों द्वारा कारण बताओ सूचनाएं जारी करके स्पष्टीकरण का समुचित अवसर दिया गया हो वहां सुनवाई के नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के अतिक्रमण की दलील स्वीकार नहीं की जा सकती – अतिरिक्त अवसर देना उपर्युक्त सिद्धांत को विस्तारित करना होगा ।

याची वाद संख्या 5 में तारीख 17 जुलाई, 1995 की कारण बताओ सूचना, 1997 के मामला सं. 6 में तारीख 17 जुलाई, 1997 की सूचना और तारीख 7 दिसम्बर, 1998 के उन आदेशों से जो 1999 के संशोधन आवेदन संख्या 30524 के साथ उपाबंध एस. ए.-1 और एस. ए.-2 के रूप में फाइल किए गए हैं, व्यथित हुए हैं जिनके द्वारा राज्य सरकार ने प्ररूप संख्या 11 और 12 में आयुध व्यवहारी अनुज्ञप्ति को रद्द कर दिया है ।

अतः याचियों ने यह सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका फाइल की । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में प्राक्षेपिकी विज्ञानी की राय उपाबंध-23 के रूप में उपलब्ध है जो यह उपदर्शित करती है कि पिस्तौल पर की गई उत्कीर्ण संख्या 11005882 के अतिरिक्त, उस पर अग्न्यायुध के निर्माता के नाम के बारे में कोई उत्कीर्ण नहीं है । मैसर्स एस. एन. नियोगी एंड कंपनी और अन्य के मामले में प्राक्षेपिकी विज्ञानी की राय यह थी कि पिस्तौल पर उत्कीर्ण असली था और यह विनिर्माता द्वारा किया गया था परन्तु वर्तमान मामले में प्राक्षेपिकी विज्ञानी की रिपोर्ट यह है कि इसमें किसी तरह का कोई उत्कीर्ण नहीं था । परिणामतः याची का मामला उस आधार पर मैसर्स एस. एन. नियोगी एंड कंपनी और अन्य के समरूप नहीं है और इसलिए याची यह दावा नहीं कर सकता कि इस याचिका का मैसर्स एस. एन. नियोगी एंड कंपनी और अन्य वाले मामले के निर्णय के निबंधनों में विनिश्चित किया जाए । नियम यह उपबंध करता है कि व्यवहारी द्वारा जब कोई अग्न्यायुध विक्रय करने के लिए रखा जाता है और उस पर राज्य सरकार द्वारा यथा आबंटित विनिर्माता का नाम या आयातकर्ता का सुभेदक चिह्न नहीं दर्शाया गया है तो उसे उप-नियम (1) के अधीन सारणी के स्तंभ में उल्लिखित स्थान पर उत्कीर्ण चिह्न बनाने हेतु राज्य सरकार को भेजा जाएगा । याची ने स्वीकृततः दूसरे व्यवहारी अर्थात् मैसर्स मिराजुद्दीन से अग्न्यायुध पिस्तौल संख्या 11005882 क्रय की थी और वह श्री नफीस अहमद को विक्रीत कर दी थी । दूसरी पिस्तौल संख्या 117642 मैसर्स एच. एन. साहू एंड कंपनी से याची द्वारा क्रय की गई थी और वह भी विक्रीत कर दी गई थी । दोनों पिस्तौलों पर विनिर्माता का नाम नहीं दिया गया था । नियम यह अपेक्षा करते हैं कि याची को ऐसी परिस्थितियों के अधीन उन्हें किसी को विक्रय करने से पूर्व सुभेदक चिह्न का उत्कीर्ण करने के लिए पिस्तौलें राज्य सरकार को भेजनी चाहिए थीं । याची ने इस बात से इनकार नहीं किया है कि उसने आयुध नियम, 1962 के नियम 25 की अपेक्षा का अतिक्रमण किया है और उसने उन दोनों पिस्तौलों का विक्रय कर दिया है जिन पर विनिर्माताओं का नाम अंकित नहीं था । (पैरा 9, 14 और 15)

याचियों की अगली दलील यह है कि आक्षेपित आदेशों को पारित करने से पूर्व उन्हें कोई अवसर नहीं दिया गया है । स्वीकृततः याचियों को जिला मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद द्वारा दो कारण बताओ सूचनाएं (रिट याचिका का

उपाबंध-1 और 2) जारी की गई थीं और राज्य सरकार ने भी याचियों को दो कारण बताओ सूचनाएं (रिट याचिका का उपाबंध-3 और 4) जारी की थीं । याची ने सभी कारण बताओ सूचनाओं का जवाब दिया था जिस पर रद्दकरण का आक्षेपित आदेश पारित करते समय विचार किया गया था । कारण बताओ सूचनाओं का परिशीलन करने से यह उपदर्शित होता है कि अभिकथन का सार यह था कि पिस्तौलों पर विनिर्माताओं का नाम दर्शित नहीं था और इसलिए याची ने आयुध नियमों के नियम 25 के उपबंधों का कानूनी तौर पर अतिक्रमण किया था । याचियों द्वारा 39 पैराओं में दिए गए स्पष्टीकरण में आयुध नियमों के नियम 25 के अननुपालन को न्यायोचित ठहराने के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया और इसलिए अपेक्षित स्पष्टीकरण के अभाव में ऐसा कुछ नहीं कहा जा सकता था जो मौखिक सुनवाई के समय सामने रखा जा सकता । यह स्पष्टीकरण कि अग्न्यायुध दूसरे व्यवहारी से क्रय किया गया था और उसे ही बेचा गया था, याची को आयुध नियम, 1962 के नियम 25(2) के लागू होने से किसी भी प्रकार से मुक्त नहीं करता है क्योंकि उसने इसे क्रय करना स्वीकार किया है और उसे बेचने तक अपने कब्जे में रखा था । इसलिए यह दलील कि वर्तमान मामले में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अतिक्रमण किया गया है, स्वीकार नहीं की जा सकती । वस्तुतः यदि दलील स्वीकार की जाती है तो यह नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों को अनैसर्गिक विस्तार देना होगा । वर्तमान मामले में, कारण बताओ सूचनाओं में किए गए अभिकथन ऐसे नहीं थे जिससे कि तथ्यों पर ऐसा कोई स्पष्टीकरण मांगा जाता जिसकी कोई दस्तावेजी प्रतिरक्षा की जाती । आक्षेपित आदेशों (उपाबंध एस. ए.-1 और एस. ए.-2) के संबंध में याची द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण के प्रत्येक पैरा पर विचार किया गया है । प्रत्येक पैरा का पृथक् रूप से स्पष्टीकरण दिया गया है । इसका परिशीलन करने से इसमें कोई गलती और अवैधता दर्शित नहीं होती है । अनुज्ञप्ति के रद्दकरण के कारण स्पष्ट रूप से दिए गए हैं और ऐसा नहीं है कि अनुज्ञप्तियां केवल याचियों के विरुद्ध कुछ दांडिक मामले लंबित होने के कारण रद्द की गई हैं । अतः याची के विरुद्ध लंबित दांडिक मामलों में केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की जांच या सी. बी. सी. आई. डी. की जांच या निष्कर्ष अनुज्ञप्ति रद्द करने के लिए एक कारण नहीं हो सकती । प्रत्यर्थियों ने आयुध अधिनियम और नियमों के उपबंधों के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग किया था इसलिए तारीख 17 सितम्बर, 1967 को सचिव द्वारा मुख्य मंत्री को लिखा गया पत्र (रिट याचिका का उपाबंध-19) कानून के अधीन किसी शक्ति के प्रयोग में जारी नहीं किया गया था

अपितु यह राज्य विधान सभा के सदस्य के अनुरोध पर लिखा गया था । पत्र में यह कहा गया है कि कार्यवाहियां नियमों के अनुसार ही की जानी चाहिए । (पैरा 16 और 19)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2002] 1998 की रिट याचिका सं. 15652, तारीख 13 अगस्त, 2002 को विनिश्चित :
मैसर्स एस. एन. नियोगी एंड कंपनी और अन्य
बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** । 6,8,9

आरंभिक (सिविल रिट) अधिकारिता : 1998 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 3286.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका ।

याचियों की ओर से सर्वश्री अजीत कुमार, ए. कुमार, सी. बी. यादव, जी. एस. चतुर्वेदी, एस. गोपाल, श्रीमती गबरी, विमलेश श्रीवास्तव और ताहिर हुसैन

प्रत्यर्थियों की ओर से मुख्य स्थायी काउंसेल

न्यायमूर्ति संजय मिश्रा – याची की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री ताहिर हुसैन और प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् स्थायी काउंसेल को सुना । पक्षकारों के बीच प्रति-शपथपत्रों एवं प्रत्युत्तर शपथपत्रों का आदान-प्रदान किया गया ।

2. याची वाद संख्या 5 में तारीख 17 जुलाई, 1995 की कारण बताओ सूचना, (उपाबंध-1), 1997 के मामला सं. 6 में तारीख 17 जुलाई, 1997 की सूचना (उपाबंध-2) और तारीख 7 दिसम्बर, 1998 के उन आदेशों से जो 1999 के संशोधन आवेदन संख्या 30524 के साथ उपाबंध एस. ए.-1 और एस. ए.-2 के रूप में फाइल किए गए हैं, व्यथित हुए हैं जिनके द्वारा राज्य सरकार ने प्ररूप संख्या 11 और 12 में आयुध व्यवहारी अनुज्ञप्ति को रद्द कर दिया है ।

3. जिला मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद द्वारा 1997 के वाद संख्या 5 में जारी

तारीख 17 जुलाई, 1997 की सूचना (रिट याचिका का उपाबंध-1) द्वारा इस बारे में याचियों से उत्तर देने के लिए कारण बताओ सूचना जारी की गई थी कि क्यों न अनुज्ञप्ति संख्या 36 प्ररूप संख्या 13 को रद्द कर दिया जाए । यह अभिकथन किया गया था कि उसने तारीख 21 जून, 1965 को मैसर्स मिराजुद्दीन आयुध व्यवहारी को 30 बोर की एक पिस्तौल संख्या 11005882 विक्रीत की थी जिस पर विनिर्माता का नाम नहीं था और तत्पश्चात् यह पिस्तौल श्री नफीस अहमद को विक्रीत की गई थी । आयुध नियम, 1962 के नियम 25(2) का अननुपालन अभिकथित किया गया था जो आयुध अधिनियम की धारा 8(2) का अतिक्रमण होने के कारण अधिनियम की धारा 25 के अधीन दण्डनीय था । तारीख 8 जुलाई, 1967 को एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट संख्या 632/67 शाहगंज पुलिस थाने में रजिस्ट्रीकृत की गई थी ।

4. जिला मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद द्वारा 1997 के वाद संख्या 6 में जारी किए गए तारीख 17 जुलाई, 1997 के नोटिस (रिट याचिका का उपाबंध- 1) का इस बारे में उत्तर देने के लिए याचियों को कारण बताओ सूचना जारी की गई थी कि क्यों न प्ररूप संख्या 14 में अनुज्ञप्ति संख्या 17 को रद्द कर दिया जाए । यह अभिकथन किया गया था कि उसने मैसर्स एच. एन. साहू एंड कंपनी से 30 बोर की एक पिस्तौल संख्या 117642 तारीख 18 अक्तूबर, 1964 को क्रय की थी और इसका विक्रय कर दिया था किन्तु इस पर विनिर्माता का नाम नहीं दिया गया था । यह अभिकथित किया गया था कि आयुध नियम, 1962 के नियम 25(2) का अननुपालन हुआ था जो आयुध अधिनियम की धारा 8 (2) का अतिक्रमण होने के कारण अधिनियम की धारा 25 के अधीन दण्डनीय था । तारीख 8 जुलाई, 1967 को एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट संख्या 632/67 भी शाहगंज पुलिस स्टेशन में रजिस्ट्रीकृत कराई गई थी ।

5. तारीख 9 अक्तूबर, 1967 को दोनों कारण बताओ सूचनाएं यह कारण बताने के लिए राज्य सरकार द्वारा जारी की गई थीं कि तारीख 23 जून, 1967 के प्ररूप 11 में अनुज्ञप्ति संख्या 1 एल. 1968 और तारीख 23 जून, 1967 के प्ररूप 12 में अनुज्ञप्ति संख्या 2 एल. 1968 को रिट याचिका के उपाबंध-3 और 4 में किए गए अभिकथनों के आधार पर क्यों न रद्द किया जाए । राज्य सरकार ने तारीख 7 दिसम्बर, 1998 के दोनों आदेशों (उपाबंध एस. ए.-1 और एस. ए.-2) द्वारा प्ररूप 11 और प्ररूप 12 में अनुज्ञप्ति को रद्द कर दिया । याची द्वारा इन आदेशों को 1999 के

संशोधन आवेदन संख्या 30524 में याची द्वारा आक्षेपित किया गया है ।

6. याची के विद्वान् काउंसेल ने केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की जांच के लंबित होने की कार्यवाहियों और याची के प्रत्युत्तर के संबंध में रिट याचिका के विभिन्न उपाबंधों को निर्दिष्ट करते हुए विस्तृत दलीलें दी हैं । तथापि, रिट याचिका के उपाबंध 23 के रूप में फाइल तारीख 29 सितम्बर, 1969 की प्राक्षेपिकी विज्ञानी की रिपोर्ट का **मैसर्स एस. एन. नियोगी एंड कंपनी और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय को दृष्टिगत करते हुए यह उपदर्शित करने के लिए निर्देश किया गया है कि इस मामले के तथ्य समरूप हैं । निर्णय की एक प्रमाणित प्रति इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई है ।

7. याची के विद्वान् काउंसेल ने प्रथम दलील यह दी है कि मेरे समक्ष के याची का मामला **मैसर्स एस. एन. नियोगी एंड कंपनी और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले के समरूप ही है और इसलिए रिट याचिका को उन्हीं निबंधनों में मंजूर किया जाना चाहिए जैसा कि मैसर्स एस. एन. नियोगी को मंजूर किया गया है ।

8. इस रिट याचिका के अभिलेखों की जांच करने पर पूर्वोक्त दलील उक्त मामले की समरूपता की परीक्षा में सफल नहीं होती । **मैसर्स एस. एन. नियोगी एंड कंपनी और अन्य** (उपर्युक्त) वाला मामला यह था कि उसके द्वारा विक्रय की गईं अनेकों पिस्तौलों के मामले में जो प्राक्षेपिकी विज्ञानी की राय के लिए भेजी गई थीं, यह रिपोर्ट दी गई थी कि पिस्तौल पर की गई उत्कीर्ण असली हैं और विनिर्माता द्वारा की गई हैं । न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि राज्य सरकार या जिला मजिस्ट्रेट के पास प्राक्षेपिकी विज्ञानी की रिपोर्ट उस समय उपलब्ध नहीं थी जब मैसर्स एस. एन. नियोगी एंड कंपनी और अन्य की अनुज्ञप्ति रद्द की गई थी । परिणामस्वरूप यह निदेश दिया गया था कि प्राधिकारियों को प्राक्षेपिकी विज्ञानी की राय पर विचार करते हुए 1962 के आयुध नियमों के नियम 25 को ध्यान में रखते हुए अपने विनिश्चय पर पुनः विचार करना चाहिए ।

9. वर्तमान मामले में प्राक्षेपिकी विज्ञानी की राय उपाबंध-23 के रूप में उपलब्ध है जो यह उपदर्शित करती है कि पिस्तौल पर की गई उत्कीर्ण संख्या 11005882 के अतिरिक्त, उस पर अग्न्यायुध के निर्माता के नाम के बारे में कोई उत्कीर्ण नहीं है । **मैसर्स एस. एन. नियोगी एंड कंपनी और**

---

[1] 1998 रिट याचिका सं. 15652, तारीख 13 अगस्त, 2002 को विनिश्चित ।

अन्य (उपरोक्त) के मामले में प्राक्षेपिकी विज्ञानी की राय यह थी कि पिस्तौल पर उत्कीर्ण असली था और यह विनिर्माता द्वारा किया गया था परन्तु वर्तमान मामले में प्राक्षेपिकी विज्ञानी की रिपोर्ट यह है कि इसमें किसी तरह का कोई उत्कीर्ण नहीं था । परिणामतः याची का मामला उस आधार पर **मैसर्स एस. एन. नियोगी एंड कंपनी और अन्य** (उपरोक्त) के समरूप नहीं है और इसलिए याची यह दावा नहीं कर सकता कि इस याचिका का **मैसर्स एस. एन. नियोगी एंड कंपनी और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले के निर्णय के निबंधनों में विनिश्चित किया जाए ।

10. जहां तक याची की अनुज्ञप्ति को रद्द करने के लिए तारीख 7 दिसम्बर, 1998 के दोनों आक्षेपित आदेशों में दिए गए कारणों का संबंध है वह पूर्णतया स्पष्ट हैं । कारण बताओ सूचना जिन अभिकथनों के साथ जारी की गई थी, वे इस प्रकार हैं :–

(उपाबंध – 1)

> "आप द्वारा प्रदत्त सूचना के आधार पर एवं उपलब्ध अभिलेखों के अध्ययनोपरान्त यह तथ्य प्रमाणिक रूप से स्पष्ट हुआ है कि आपने 30 बोर की पिस्टल संख्या 11005882 जिस पर शस्त्र निर्माता कम्पनी का नाम नहीं था दिनांक 21.09.95 को मैसर्स मिराजुद्दीन पुत्र सिराजुद्दीन शस्त्र विक्रेता 137 मराठी मोहल्ला, सदर बाजार, इन्दौर से क्रय करके उसे श्री नफीस अहमद पुत्र श्री जगदमुल हुसैन निवास ग्राम कृपालपुर थाना सोराब, इलाहाबाद को विक्रीत किया है । आपको उक्त पिस्टलों को क्रेताओं से बेचने से पूर्व पिस्टलों पर पहचान चिह्न यथा शस्त्र निर्माता कम्पनी का नाम आदि अंकित न होने की स्थिति में शस्त्र नियमावली, 1962 की धारा 25(2) के अंतर्गत राज्य सरकार से शस्त्र पर पहचान चिह्न खुदवाने हेतु आवेदन पत्र प्रस्तुत करना चाहिए था तथा राज्य सरकार द्वारा उक्त शस्त्रों पर निर्धारित पहचान चिह्न अंकित किए जाने के बाद ही उन्हें बेचना चाहिए था किन्तु आपने जानबूझकर ऐसा नहीं किया जो धारा 8(2) शस्त्र अधिनियम का उल्लंघन है तथा धारा 25 के अंतर्गत दण्डनीय अपराध है । आपकी फर्म के विरुद्ध उपरोक्त दुष्कृत्य के लिए थाना शाहगंज में मु. अ. सं. 631/97 दिनांक 8.7.97 को पंजीकृत भी करा दिया गया है ।"

(उपाबंध – 2)

> "आप द्वारा प्रदत्त सूचना के आधार पर एवं उपलब्ध अभिलेखों के

अध्ययनोपरान्त यह तथ्य प्रमाणिक रूप से स्पष्ट हुआ है कि आपने 30 बोर की पिस्टल संख्या 117642 जिस पर शस्त्र निर्माता कम्पनी का नाम नहीं था, दिनांक 18.10.94 को मैसर्स एच. एन. साहू एंड कंपनी, इलाहाबाद से क्रय करके विक्रीत किया है । इसी प्रकार आपने 30 बोर की पिस्टल संख्या 11005882 जिस पर शस्त्र निर्माता कम्पनी का नाम नहीं था दिनांक 21.09.95 को मैसर्स मिराजुद्दीन पुत्र श्री सिराजुद्दीन शस्त्र विक्रेता 137 मराठी मोहल्ला, सदर बाजार, इन्दौर से क्रय करके उसे श्री नफीस अहमद पुत्र श्री जमदमुल हुसैन निवासी ग्राम कृपालपुर थारा सोराब, इलाहाबाद को विक्रीत किया है । आपको उक्त पिस्टलों को क्रेताओं से बेचने के पूर्व पिस्टलों पर पहचान चिह्न यथा शस्त्र निर्माता कम्पनी का नाम आदि अंकित न होने की स्थिति में शस्त्र नियमावली, 1962 की धारा 25(2) के अंतर्गत राज्य सरकार से शस्त्र पर पहचान चिह्न खुदवाने हेतु आवेदन पत्र प्रस्तुत करना चाहिए था तथा राज्य सरकार द्वारा उक्त शस्त्रों पर निर्धारित पहचान चिह्न अंकित किए जाने के बाद ही उन्हें बेचना चाहिए था किन्तु आपने जानबूझकर ऐसा नहीं किया जो धारा 8(2) शस्त्र अधिनियम का उल्लंघन है तथा धारा 25 के अंतर्गत दण्डनीय अपराध है । आपकी फर्म के विरुद्ध उपरोक्त दुष्कृत्य के लिए थाना शाहगंज में मु. अ. सं. 631/97 दिनांक 8.7.97 को पंजीकृत भी करा दिया गया है ।"

11. राज्य सरकार की सूचना (उपाबंध - 3 और 4) इस प्रकार है :–

(उपाबंध – 3)

"जिला मजिस्ट्रेट इलाहाबाद के पत्र संख्या 5813/श. लि. दिनांक 16 जुलाई, 1997 द्वारा अवगत कराया गया है कि आपने 30 बोर की पिस्टल संख्या 117642 जिस पर शस्त्र निर्माता कम्पनी का नाम नहीं था, दिनांक 18.10.94 को मैसर्स एच. एन. साहू एंड कम्पनी, इलाहाबाद से क्रय करके उसे विक्रीत किया है । इस प्रकार आपने 30 बोर की पिस्टल संख्या 11005882 जिस पर शस्त्र निर्माता कम्पनी का नाम नहीं था, दिनांक 21.09.95 को मैसर्स मिराजुद्दीन पुत्र श्री सिराजुद्दीन शस्त्र विक्रेता 137 मराठी मोहल्ला, सदर बाजार, इन्दौर से क्रय करके उसे श्री नफीस अहमद पुत्र श्री जगदमुल हुसैन निवासी ग्राम कृपालपुर थाना सोराव, इलाहाबाद को विक्रीत किया है । आपको उक्त पिस्टलों की क्रेताओं से बेचने के पूर्व

पिस्टलों पर पहचान चिह्न यथा शस्त्र निर्माता कम्पनी का नाम आदि अंकित न होने की स्थिति में शस्त्र नियमावली, 1962 की धारा 25(2) के अंतर्गत राज्य सरकार से शस्त्र पर पहचान चिह्न खुदवाने हेतु आवेदन पत्र प्रस्तुत करना चाहिए था तथा राज्य सरकार द्वारा उक्त शस्त्रों पर निर्धारित पहचान चिह्न अंकित किए जाने के बाद ही उन्हें बेचना चाहिए था किन्तु आपने जानबूझकर ऐसा नहीं किया जो धारा 8(2) शस्त्र अधिनियम का उल्लंघन है तथा धारा 25 के अंतर्गत दण्डनीय अपराध है । आपकी फर्म के विरुद्ध उपरोक्त दुष्कृत्य के लिए नगर मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद द्वारा थाना शाहगंज में मु. अ. सं. 631/97 दिनांक 8.7.97 को पंजीकृत भी करा दिया गया है ।"

(उपाबंध – 4)

"जिला मजिस्ट्रेट इलाहाबाद के पत्र संख्या 5813/श. लि. दिनांक जुलाई 16, 1997 द्वारा अवगत कराया गया है कि आपने 30 बोर की पिस्टल संख्या 117642 जिस पर शस्त्र निर्माता का नाम नहीं था, दिनांक 18.10.94 को मैसर्स एच. एन. साहू एंड कंपनी, इलाहाबाद से क्रय कर उसे विक्रीत किया है इस प्रकार आपने 30 बोर की पिस्टल संख्या 11005882 जिस पर शस्त्र निर्माता कम्पनी का नाम नहीं था, दिनांक 21.09.95 को मैसर्स मिराजुद्दीन पुत्र श्री सिराजुद्दीन शस्त्र विक्रेता 137 मराठी मोहल्ला, सदर बाजार, इन्दौर से क्रय करके उसे श्री नफीस अहमद पुत्र श्री जगदमुल हुसैन निवासी ग्राम कृपालपुर थाना सोराव, इलाहाबाद को उनके शस्त्र लाइसेंस संख्या 8203/11 थाना सोराव, इलाहाबाद पर विक्रीत किया है । आपको उक्त पिस्टलों को क्रेताओं से बेचने के पूर्व पिस्टलों पर पहचान चिह्न यथा शस्त्र निर्माता कम्पनी का नाम आदि अंकित न होने की स्थिति में शस्त्र नियमावली, 1962 की धारा 25(2) के अंतर्गत राज्य सरकार से शस्त्र पर पहचान चिह्न खुदवाने हेतु आवेदन पत्र प्रस्तुत करना चाहिए था तथा राज्य सरकार द्वारा उक्त शस्त्रों पर निर्धारित पहचान चिह्न अंकित किए जाने के बाद ही उन्हें बेचना चाहिए था किन्तु आपने जानबूझकर ऐसा नहीं किया जो धारा 8(2) शस्त्र अधिनियम का उल्लंघन है तथा धारा 25 के अंतर्गत दण्डनीय अपराध है । आपकी फर्म के विरुद्ध उपरोक्त दुष्कृत्य के लिए नगर मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद द्वारा थाना शाहगंज में मु. अ. सं. 631/97 दिनांक 8.7.97 को पंजीकृत भी करा दिया गया है ।"

12. उपरोक्त कारण बताओ सूचनाओं का परिशीलन करने से यह प्रतीत होता है कि आयुध नियमावली, 1962 के नियम 25(2) का अतिक्रमण किया गया है ।

13. नियम 25(2) इस प्रकार है :–

> "जब किसी व्यवहारी द्वारा कोई आयात किया अग्न्यायुध विक्रय के लिए रखा जाता है और उस पर विनिर्माता का नाम अंकित नहीं है, तब राज्य सरकार द्वारा आबंटित रूप में आयातकर्ता का ऐसा सुभेदक चिह्न नली (बैरल) (उस पर विद्यमान संख्या, यदि कोई हो, के बराबर) और उप-नियम (1) के अधीन सारणी के स्तंभ (2) में दर्शित अन्य भागों पर उत्कीर्ण किया जाएगा; यदि किसी बैरल पर एक से अधिक संख्या अंकित है, तो सुभेदक चिह्न मूल बीजक पर प्रकट संख्या अंकित की जाएगी । जब विनिर्माता का नाम केवल ट्रेगर गार्ड पर या अन्य प्रतिस्थाप्य भाग पर अंकित है तो वह संख्या सारणी के स्तंभ (3) में दर्शित भागों पर उत्कीर्ण की जाएगी ।"

14. नियम यह उपबंध करता है कि जब किसी व्यवहारी द्वारा कोई अग्न्यायुध विक्रय करने के लिए रखा जाता है और उस पर राज्य सरकार द्वारा यथा आबंटित विनिर्माता का नाम या आयातकर्ता का सुभेदक चिह्न नहीं दर्शाया गया है तो उसे उप-नियम (1) के अधीन सारणी के स्तंभ में उल्लिखित स्थान पर उत्कीर्ण चिह्न बनाने हेतु राज्य सरकार को भेजा जाएगा ।

15. याची ने स्वीकृततः दूसरे व्यवहारी अर्थात् मैसर्स मिराजुद्दीन से अग्न्यायुध पिस्तौल संख्या 11005882 क्रय की थी और वह श्री नफीस अहमद को विक्रीत कर दी थी । याची द्वारा दूसरी पिस्तौल संख्या 117642 मैसर्स एच. एन. साहू एंड कंपनी से क्रय की गई थी और वह भी विक्रीत कर दी गई थी । दोनों पिस्तौलों पर विनिर्माता का नाम नहीं दिया गया था । नियम यह अपेक्षा करते हैं कि याची को ऐसी परिस्थितियों के अधीन उन्हें किसी को विक्रय करने से पूर्व सुभेदक चिह्न का उत्कीर्ण करने के लिए पिस्तौलें राज्य सरकार को भेजनी चाहिए थीं । याची ने इस बात से इनकार नहीं किया है कि उसने आयुध नियम, 1962 के नियम 25 की अपेक्षा का अतिक्रमण किया है और उसने उन दोनों पिस्तौलों का विक्रय कर दिया है जिन पर विनिर्माताओं का नाम अंकित नहीं था ।

16. याचियों की अगली दलील यह है कि आक्षेपित आदेशों को पारित

करने से पूर्व उन्हें कोई अवसर नहीं दिया गया है । स्वीकृततः याचियों को जिला मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद द्वारा दो कारण बताओ सूचनाएं (रिट याचिका का उपाबंध-1 और 2) जारी की गई थीं और राज्य सरकार ने भी याचियों को दो कारण बताओ सूचनाएं (रिट याचिका का उपाबंध-3 और 4) जारी की थीं । याची ने सभी कारण बताओ सूचनाओं का जवाब दिया था जिस पर रद्दकरण का आक्षेपित आदेश पारित करते समय विचार किया गया था । कारण बताओ सूचनाओं का परिशीलन करने से यह उपदर्शित होता है कि अभिकथन का सार यह था कि पिस्तौलों पर विनिर्माताओं का नाम दर्शित नहीं था और इसलिए याची ने आयुध नियमों के नियम 25 के उपबंधों का कानूनी तौर पर अतिक्रमण किया था । याचियों द्वारा 39 पैराओं में दिए गए स्पष्टीकरण में आयुध नियमों के नियम 25 के अननुपालन को न्यायोचित ठहराने के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है और इसलिए अपेक्षित स्पष्टीकरण के अभाव में ऐसा कुछ नहीं कहा जा सकता था जो मौखिक सुनवाई के समय सामने रखा जा सकता । यह स्पष्टीकरण कि अग्न्यायुध दूसरे व्यवहारी से क्रय किया गया था और उसे ही बेचा गया था, याची को आयुध नियम, 1962 के नियम 25(2) के लागू होने से किसी भी प्रकार से मुक्त नहीं करता है क्योंकि उसने इसे क्रय करना स्वीकार किया है और उसे बेचने तक अपने कब्जे में रखा था । इसलिए यह दलील कि वर्तमान मामले में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अतिक्रमण किया गया है, स्वीकार नहीं की जा सकती । वस्तुतः यदि दलील स्वीकार की जाती है तो यह नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों को अनैसर्गिक विस्तार देना होगा । वर्तमान मामले में, कारण बताओ सूचनाओं में किए गए ऐसे अभिकथन नहीं थे जिससे कि तथ्यों पर ऐसा कोई स्पष्टीकरण मांगा जाता जिसकी कोई दस्तावेजी प्रतिरक्षा की जाती ।

17. याची के विद्वान् काउंसेल की दूसरी दलील तारीख 4 फरवरी, 1997 के पत्र (रिट याचिका का उपाबंध-14) पर आधारित है । यह दलील दी गई है कि यदि पिस्तौल पर विनिर्माता का नाम न भी हो तो भी आयुध अधिनियम की धारा 8 के उपबंध लागू नहीं होंगे । तारीख 4 फरवरी, 1997 के पत्र का परिशीलन करने से यह उपदर्शित होता है कि यह इंडियन आर्डिनेंस फैक्टरियों द्वारा जारी किए गए आयुधों और इसके अधिकारियों द्वारा आयुधों के व्यक्तिगत प्रयोग से संबंधित है । ये आयुध विदेश में बनाए गए भी हो सकते हैं । यह उपबंध दो कारणों से याची की सहायता नहीं करता । प्रथमतः याची किसी फैक्टरी या मंत्रालय का

अधिकारी नहीं है और दूसरे पिस्तौल इंडियन आर्डिनेंस फैक्टरी से याची को व्यक्तिगत प्रयोग के लिए जारी नहीं की गई थी । इस प्रकार यह दलील स्वीकार नहीं की जा सकती है ।

18. श्री एस. के. सिंह सिटी मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद के विरुद्ध 1998 के संशोधन आवेदन संख्या 41848 के समर्थन में फाइल शपथपत्र में असद्भावना का अस्पष्ट अभिकथन किया गया है । असद्भावना का अभिकथन यह है कि अधिकारी ने अपने व्यक्तिगत अहम के कारण कार्यवाहियां की हैं । यह अपेक्षित है कि ऐसे व्यक्तियों को जिनके विरुद्ध असद्भावना का कथन किया गया है, इस प्रकार पक्षकार बनाया जाना चाहिए ताकि उसे ऐसे अभिकथन का प्रत्युत्तर देने के लिए अवसर प्राप्त हो सके । वर्तमान मामले में न तो श्री एस. के. सिंह को पक्षकार बनाया गया है और न ही सिटी मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद को पक्षकार बनाया है । परिणामतः ऐसे व्यक्ति की अनुपस्थिति में कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया जा सकता जिसके विरुद्ध असद्भावना का अभिकथन किया गया है । इसके अतिरिक्त असद्भावना का अभिकथन अस्पष्ट है और इस बारे में कोई ब्यौरा नहीं दिया गया है इसलिए यह दलील खारिज किए जाने योग्य है ।

19. आक्षेपित आदेशों (उपाबंध एस. ए.-1 और एस. ए.-2) के संबंध में याची द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण के प्रत्येक पैरा पर विचार किया गया है । प्रत्येक पैरा का पृथक् रूप से स्पष्टीकरण दिया गया है । इसका परिशीलन करने से इसमें कोई गलती और अवैधता दर्शित नहीं होती है । अनुज्ञप्ति के रद्दकरण के कारण स्पष्ट रूप से दिए गए हैं और ऐसा नहीं है कि अनुज्ञप्तियां केवल याचियों के विरुद्ध कुछ दांडिक मामले लंबित होने के कारण रद्द की गई हैं । अतः याची के विरुद्ध लंबित दांडिक मामलों में केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की जांच या सी. बी. सी. आई. डी. की जांच या निष्कर्ष अनुज्ञप्ति रद्द करने के लिए एक कारण नहीं हो सकती । प्रत्यर्थियों ने आयुध अधिनियम और नियमों के उपबंधों के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग किया था, इसलिए तारीख 17 सितम्बर, 1967 को सचिव द्वारा मुख्य मंत्री को लिखा गया पत्र (रिट याचिका का उपाबंध-19) कानून के अधीन किसी शक्ति के प्रयोग में जारी नहीं किया गया था अपितु यह राज्य विधान सभा के सदस्य के अनुरोध पर लिखा गया था । पत्र में यह कहा गया है कि कार्यवाहियां नियमों के अनुसार ही की जानी चाहिए ।

20. ऊपर दिए गए कारणों से आक्षेपित आदेशों में कोई गलती या अवैधता नहीं पाई जा सकी है ।

21. तद्नुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है ।

22. खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मही./मह.

राधा स्वामी सत्संग सभा और अन्य

बनाम

अमी अधार सिंह और अन्य

तारीख 13 सितम्बर, 2010

न्यायमूर्ति पंकज मित्तल

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 96 सपठित आदेश 1 नियम 8(6) – अपील – व्यक्ति विशेष की समाधि स्थल पर जाने और वहां पूजा-अर्चना करने के अधिकार का दावा करना – समुदाय के एक बड़े समूह को एक साथ वहां जाने और पूजा-अर्चना करने की अनुमति नहीं देना – विधि और व्यवस्था बाधित होने की आशंका होना – यदि विधि और व्यवस्था बाधित होने की आशंका को देखते हुए किसी बड़े समूह के व्यक्तियों को किसी व्यक्ति विशेष की समाधि स्थल पर जाने और वहां पूजा-अर्चना करने की अनुमति नहीं दी जाती है तो ऐसा आदेश युक्तियुक्त और विधिमान्य होगा क्योंकि इससे उनके किसी भी मूल अधिकार का हनन नहीं होता है ।

वर्तमान मामले में, दोनों पक्षकार राधा स्वामी सत्संग के अनुयायी हैं । राधा स्वामी सम्प्रदाय की स्थापना स्वामी शिव दयाल सिंह द्वारा की गई थी जो प्रमुखतया वर्ष 1861 में स्वामी महाराज के नाम से सुविख्यात थे । उनके उत्तराधिकारी हुजूर महाराज हुए जिनके अनुयायी महाराज साहिब हुए । इस सत्संग के अनुयायियों का प्रथम तीन संत सत् गुरुओं (एस. एस. जी.) से दुर्भावना थी । तथापि, वर्ष 1960 में महाराज साहिब की मृत्यु के पश्चात् इस सत्संग के अनुयायी विभाजित हो गए और दो विरोधी समूह अस्तित्व में आ गए । प्रथम समूह के मुखिया सरकार साहिब हुए और

दयालबाग के रूप में जाने गए और अन्य समूह के मुखिया बौजी साहिब हुए और स्वामी बाग के रूप में जाने गए । कुछ का विश्वास है कि महाराज स्वामी, बौजी महाराज के अनुयायी बौजी महाराज के उत्तराधिकारी थे । ये सभी तीनों एस. एस. जी. दोनों पक्षकारों द्वारा मान्यताप्राप्त थे और इसके पश्चात् इनके बीच प्रतिद्वंद्विता प्रारम्भ हो गई थी । तृतीय एस. एस. जी. महाराज साहिब के कार्यकाल के दौरान वर्ष 1902 में चढ़ावा (भेंट) के माध्यम से एस. एस. जी. को प्राप्त होने वाली सम्पत्तियों के संग्रहण, परिरक्षण और संरक्षण के लिए सत्संग के अनुयायियों द्वारा एक केन्द्रीय प्रशासनिक परिषद् निर्वाचित की गई । एक अन्य छोटी समिति जो राधा स्वामी न्यास के रूप में जानी जाती है, का भी गठन केन्द्रीय प्रशासनिक परिषद् के सदस्यों में से किया गया जिनका कार्य एस. एस. जी. की सम्पत्तियों का प्रबंध करने में केन्द्रीय प्रशासनिक परिषद् की सहायता करती थी । वर्ष 1943 में राधा स्वामी सम्प्रदाय सभा, दयालबाग, आगरा और अन्य ने प्रतिवादियों के विरुद्ध निम्नलिखित अनुतोषों के लिए 1943 की वाद सं. 1 फाइल की - (1) वाद की सम्पत्तियों के उपभोग में हस्तक्षेप कारित करने से प्रतिवादियों को अवरुद्ध करते हुए शाश्वत व्यादेश की डिक्री पारित की जाए, (2) वाद की सम्पत्तियों का प्रबंध करने से प्रतिवादियों को हटाया जाए और उसका कब्जा न्यायालय द्वारा नियुक्त किए जाने वाले व्यक्तियों के नए निकाय को सौंपने का निर्देश दिया जाए, (3) वाद की सम्पत्तियों में उनके द्वारा किए गए लेखाओं विशिष्टतया वर्ष 1904 से चढ़ावा के रूप में प्राप्त होने वाली आय के संबंध में लेखा देने के लिए प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाए । वाद में अन्तर्ग्रस्त 23 सम्पत्तियों में से सम्पत्ति सं. 1, 2 और 4 तात्विक और सुसंगत हैं । सम्पत्ति सं. 2 स्वामी बाग, आगरा में है जहां संस्थापक एस. एस. जी. स्वामी जी महाराज की समाधि स्थित है । सम्पत्ति सं. 4 हुजूर महाराज की समाधि से जुड़े प्रेम विलास, आगरा में है और सम्पत्ति सं. 1 महाराज साहिब की समाधि से जुड़े स्वामी बाग, वाराणसी में है । द्वितीय अपर सिविल न्यायाधीश, आगरा द्वारा तारीख 5 जुलाई, 1961 के निर्णय और आदेश द्वारा पूर्वोक्त वाद की डिक्री कर दी गई । प्रथम दोनों अनुतोष मंजूर कर लिए गए थे और तृतीय अनुतोष के संबंध में वाद खारिज कर दिया गया था । प्रतिवादियों को वादियों द्वारा तीनों समाधियों पर पूजा करने के अधिकार का प्रयोग करने और वाद की सम्पत्तियों में उपभोग करने से हस्तक्षेप कारित करने से अवरुद्ध करते हुए स्थायी डिक्री द्वारा शाश्वत रूप से रोक लगा दी गई थी । प्रतिवादियों और अन्य न्यासियों

को वाद की सम्पत्तियों का प्रबंध करने से हटा दिया गया और सम्पत्तियों का कब्जा न्यायालय द्वारा नियुक्त रिसीवर को सौंपने का निर्देश दिया गया और प्रथम तीनों एस. एस. जी. के अनुयायियों की सलाह से प्रबन्ध की स्कीम न्यायालय द्वारा तैयार करने का निर्देश दिया गया । स्कीम के अंतिम होने पर, न्यायियों के प्रथम निकाय का निर्वाचन करने का निदेश दिया गया ताकि वाद की सम्पत्तियों का प्रभार निर्वाचित निकायों को न्यस्त किया जा सके । वादी/अपीलार्थी दो अनुतोष मंजूर करने से संतुष्ट नहीं थे और इस प्रकार, उन्होंने वर्तमान 1961 की प्रथम अपील सं. 301 प्रस्तुत की । न्यायालय द्वारा अपील तद्नुसार निपटाते हुए,

अभिनिर्धारित – यह न्यायालय संबंधित खंड न्यायपीठ द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों या अधिकथित विनिश्चयाधार पर विचार नहीं कर सकता है । यह राधा स्वामी सम्प्रदाय के ही दो विरोधी समूहों के बीच विवाद्यक है । पूर्ववर्ती वाद में पक्षकार दो परस्पर विरोधी समूहों की ओर से प्रतिनिधि की हैसियत में उपस्थित हुए थे । वर्तमान वाद/अपील में भी इसी प्रकार की प्रास्थिति है । यहां यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि प्रतिनिधित्व उस पूरे समूह पर आबद्धकर होता है जिसका वे इस प्रकार प्रतिनिधित्व करते हैं । वादी/अपीलार्थियों ने स्वयमेव उस समूह से भिन्न होने का दावा नहीं किया है जिसका पूर्व में प्रतिनिधित्व किया गया था । वे वस्तुतः उसी समूह के अनुयायी हैं । इस संदर्भ में, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 1 नियम 8(6) सुसंगत और महत्वपूर्ण है । इसका स्पष्टतः आधार तत्व यह है कि एक वाद में पारित डिक्री उन सभी व्यक्तियों पर आबद्धकर होगी जिनकी ओर से इसे संस्थित किया गया है या इसका प्रतिवाद किया गया है, जैसी भी स्थिति हो । वर्तमान वाद के वादी/अपीलार्थियों का एक ही हित है यद्यपि पूर्ववर्ती वाद के वादियों का वाद हेतुक भिन्न और पृथक् हो सकता है । (पैरा 23 और 24)

उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय की यह राय है कि जहां पक्षकार प्रतिनिधि की हैसियत में उपस्थित हुए हैं न कि व्यक्तिगत रूप से तो जैसा कि पूर्ववर्ती न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि है, यद्यपि निष्कर्ष कठोर अर्थों में प्राग न्याय के रूप में परिवर्तित नहीं हो सकते हैं फिर भी वे सुनिश्चित रूप से पूर्व-निर्णय के रूप में आबद्धकर हो सकते हैं । खंड न्यायपीठ ने जैसा कि पूर्व में कथित किया है, स्पष्टतः यह अभिनिर्धारित किया है कि किसी भी व्यक्ति को केन्द्रीय प्रशासनिक परिषद् की अनुज्ञा के

सिवाय राधा स्वामी सम्प्रदाय के किसी भी पवित्र जगहों या स्थानों पर आयोजित धार्मिक या अनुष्ठानों या भंडारों में जाने या भाग लेने का कोई वैधतः प्रवर्तनीय अधिकार नहीं है । यह यथार्थ विनिश्चयाधार होने के नाते पूर्ण बल के साथ लागू होगा और न्यायालय कम-से-कम यह अभिनिर्धारित करने के लिए बाध्य है कि कोई भी प्रथमदृष्ट्या मामला वादियों/ अपीलार्थियों के पक्ष में नहीं बनाया गया है अथवा यह कि उनके पक्ष में सुविधा का संतुलन है । स्वीकृततः, केन्द्रीय प्रशासनिक परिषद् ने तारीख 8 अगस्त, 2010 के संकल्प द्वारा वादी/अपीलार्थियों की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया था । उपर्युक्त के होते हुए भी, श्री सिन्हा ने आरम्भ में ही अतिनिष्पक्ष रूप से निवेदन किया था कि इस बारे में कोई समस्या नहीं हो सकती है यदि अनुयायी व्यक्तिगत रूप से समाधि पर जाते हैं और पवित्र धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेते हैं जो विनिन्न शुभ दिनों में आयोजित किया जाता है । यह उल्लेख करना लाभदायक हो सकता है कि वादी/अपीलार्थियों ने 5 लाख अनुयायियों के लिए और उन की ओर से उपर्युक्त अनुज्ञा की ईप्सा की है । व्यक्तियों के इतने बड़े समूहों को भी इस प्रकार जाने और पूजा करने के अधिकार को लोक व्यवस्था के हित में भी मंजूर नहीं किया जा सकता है । यह सामान्य ज्ञान की बात है कि धार्मिक और सांस्कृतिक समुदायों के इतने बड़े समूहों को साधारणतया नियंत्रित नहीं किया जा सकता है और यह स्थानीय प्रशासन के नियंत्रण के बाहर हो जाता है । इसलिए, यह हमेशा ही न्याय के हित में होता है कि इस परिस्थिति से बचा जाए । इसका परिणाम यह हो सकता है कि इससे किसी विशिष्ट समुदाय या लोगों के समूह के अधिकारों को छोड़ना पड़े किन्तु व्यक्तिगत अधिकार, या विशिष्ट समुदाय के अधिकार या व्यक्तियों के वर्ग के अधिकार को लोक हित के माध्यम से प्रदान किया जाता है और विधि व्यवस्था की स्थिति के साथ ही लोक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए व्यक्तियों के छोटे समूह को अनुमति दी जा सकती है । पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि वादी-अपीलार्थियों के पक्ष में ऐसा कोई प्रथमदृष्ट्या मामला नहीं बनता है जिससे कि उन्हें सम्प्रदाय के आरम्भ होने की 150वीं वर्षगांठ के विशेष अवसरों पर भी स्वामी जी महाराज, स्वामी बाग, आगरा की समाधि पर जाने और पूजा करना मंजूर किया जाए अतएव, वे उक्त अधिकार का प्रयोग मात्र केन्द्रीय प्रशासनिक परिषद् की अनुज्ञा से ही कर सकते हैं । (पैरा 25, 26, 27, 28 और 29)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1935] ए. आई. आर. 1935 प्रिवी कौंसिल 97 :
पटेल छोटाभाई और अन्य बनाम **जनन चन्द्र वसत् और अन्य** । 4

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 1961 की प्रथम अपील सं. 301.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन प्रथम अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री विपिन कुमार सक्सेना, स्वामी दयाल और अनन्त विजय

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री विपिन सिन्हा और नवीन सिन्हा

न्यायमूर्ति पंकज मित्तल – वादी/अपीलार्थी सं. 1 की ओर से यह आवेदन स्वामी महाराज, स्वामी बाग, आगरा की समाधि पर उनकी 150वीं वर्षगांठ के अवसर पर आवेदन के समर्थन में फाइल शपथपत्र के उपाबंध 4 में उल्लिखित विनिर्दिष्ट अवसरों/तारीखों पर प्रार्थना करने और सत्संग आयोजित करने के लिए न्यायालय से अनुज्ञा की ईप्सा करते हुए फाइल किया गया है ।

2. इस अपील में लड़ने वाले दोनों पक्षकार राधा स्वामी सत्संग के अनुयायी हैं ।

3. राधा स्वामी सम्प्रदाय की स्थापना स्वामी शिव दयाल सिंह द्वारा की गई थी जो प्रमुखतया वर्ष 1861 में स्वामी महाराज के नाम से सुविख्यात थे । उनके उत्तराधिकारी हुजूर महाराज हुए जिनके अनुयायी महाराज साहिब हुए । इस सत्संग के अनुयायियों का प्रथम तीन संत सत् गुरुओं (एस. एस. जी.) से दुर्भावना थी । तथापि, वर्ष 1960 में महाराज साहिब की मृत्यु के पश्चात् इस सत्संग के अनुयायी विभाजित हो गए और दो विरोधी समूह अस्तित्व में आ गए । प्रथम समूह के मुखिया सरकार साहिब हुए और दयालबाग के रूप में जाने गए और अन्य समूह के मुखिया बौजी साहिब हुए और स्वामी बाग के रूप में जाने गए । कुछ का विश्वास है कि महाराज स्वामी, बौजी महाराज के अनुयायी बौजी महाराज के उत्तराधिकारी थे । ये सभी तीनों एस. एस. जी. दोनों पक्षकारों द्वारा मान्यताप्राप्त थे और इसके पश्चात् इनके बीच प्रतिद्वंद्विता प्रारम्भ हो गई थी ।

4. तृतीय एस. एस. जी. महाराज साहिब के कार्यकाल के दौरान वर्ष 1902 में चढ़ावा (भेंट) के माध्यम से एस. एस. जी. को प्राप्त होने वाली सम्पत्तियों के संग्रहण, परिरक्षण और संरक्षण के लिए सत्संग के अनुयायियों द्वारा एक केन्द्रीय प्रशासनिक परिषद् निर्वाचित की गई । एक अन्य छोटी समिति जो राधा स्वामी न्यास के रूप में जानी जाती है, का भी गठन केन्द्रीय प्रशासनिक परिषद् के सदस्यों में से किया गया जिनका कार्य एस. एस. जी. की सम्पत्तियों का प्रबंध करने में केन्द्रीय प्रशासनिक परिषद् की सहायता करती थी । **पटेल छोटाभाई और अन्य** बनाम **जनन चन्द्र वसत् और अन्य**[1] वाले मामले में स्वयमेव राधा स्वामी सम्प्रदाय से संबंधित एक वाद से उद्भूत अपील में माननीय प्रिवी काउंसेल के न्यायाधीशों ने वाद में की गई प्रथम प्रार्थना (क) और (ख) को मंजूर करते हुए यह घोषित किया था कि तथाकथित राधा स्वामी न्यास का अस्तित्व अब विधि में नहीं है, विधिक और वैध न्यास नहीं है और लोक, पूर्त या धार्मिक प्रयोजनों के लिए सृजित न्यास के रूप में इसे मान्यता नहीं दी जा सकती है ।

5. वर्ष 1943 में राधा स्वामी सम्प्रदाय सभा, दयालबाग, आगरा और अन्य ने प्रतिवादियों के विरुद्ध निम्नलिखित अनुतोषों के लिए 1943 की वाद सं. 1 फाइल की :–

(1) वाद की सम्पत्तियों के उपभोग में हस्तक्षेप कारित करने से प्रतिवादियों को अवरुद्ध करते हुए शाश्वत व्यादेश की डिक्री पारित की जाए,

(2) वाद की सम्पत्तियों का प्रबंध करने से प्रतिवादियों को हटाया जाए और उसका कब्जा न्यायालय द्वारा नियुक्त किए जाने वाले व्यक्तियों के नए निकाय को सौंपने का निर्देश दिया जाए,

(3) वाद की सम्पत्तियों में उनके द्वारा किए गए लेखाओं विशिष्टतया वर्ष 1904 से चढ़ावा के रूप में प्राप्त होने वाली आय के संबंध में लेखा देने के लिए प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाए ।

6. वाद में अन्तर्ग्रस्त 23 सम्पत्तियों में से सम्पत्ति सं. 1, 2 और 4 तात्विक और सुसंगत हैं । सम्पत्ति सं. 2 स्वामी बाग, आगरा में है जहां संस्थापक एस. एस. जी. स्वामी जी महाराज की समाधि स्थित है । सम्पत्ति सं. 4 हुजूर महाराज की समाधि से जुड़े प्रेम विलास, आगरा में है और

---

[1] ए. आई. आर. 1935 प्रिवी कौंसिल 97.

सम्पत्ति सं. 1 महाराज साहिब की समाधि से जुड़े स्वामी बाग, वाराणसी में है ।

7. द्वितीय अपर सिविल न्यायाधीश, आगरा द्वारा तारीख 5 जुलाई, 1961 के निर्णय और आदेश द्वारा पूर्वोक्त वाद की डिक्री कर दी गई । प्रथम दोनों अनुतोष मंजूर कर लिए गए थे और तृतीय अनुतोष के संबंध में वाद खारिज कर दिया गया था । प्रतिवादियों को वादियों द्वारा तीनों समाधियों पर पूजा करने के अधिकार का प्रयोग करने और वाद की सम्पत्तियों में उपभोग करने से हस्तक्षेप कारित करने से अवरुद्ध करते हुए स्थायी डिक्री द्वारा शाश्वत रूप से रोक लगा दी गई थी । प्रतिवादियों और अन्य न्यासियों को वाद की सम्पत्तियों का प्रबंध करने से हटा दिया गया और सम्पत्तियों का कब्जा न्यायालय द्वारा नियुक्त रिसीवर को सौंपने का निर्देश दिया गया और प्रथम तीनों एस. एस. जी. के अनुयायियों की सलाह से प्रबन्ध की स्कीम न्यायालय द्वारा तैयार करने का निर्देश दिया गया । स्कीम के अंतिम होने पर, न्यायियों के प्रथम निकाय का निर्वाचन करने का निदेश दिया गया ताकि वाद की सम्पत्तियों का प्रभार निर्वाचित निकायों को न्यस्त किया जा सके ।

8. वादी/अपीलार्थी दो अनुतोष मंजूर करने से संतुष्ट नहीं थे और इस प्रकार, उन्होंने वर्तमान 1961 की प्रथम अपील सं. 301 प्रस्तुत की ।

9. इसी प्रकार, निचले न्यायालय की डिक्री से व्यथित होकर प्रतिवादियों ने भी 1961 की प्रथम अपील सं. 239 प्रस्तुत की । उक्त अपील में डिक्री के निष्पादन पर रोक लगाते हुए तारीख 10 अक्तूबर, 1961 को एक अन्तरिम आदेश पारित किया गया । उक्त आदेश के विरुद्ध 1961 की विशेष इजाजत याचिका सं. 789 प्रस्तुत की गई किन्तु उसे तारीख 30 अक्तूबर, 1961 को खारिज कर दिया गया । अन्ततोगत्वा, इस न्यायालय द्वारा तारीख 3 मई, 1962 को अन्तरिम आदेश वातिल कर दिया गया और उसके विरुद्ध प्रस्तुत विशेष इजाजत याचिका को भी तारीख 24 मई, 1962 को खारिज कर दिया गया । उक्त प्रथम अपील उसी तारीख को तारीख 17 अगस्त, 2006 के आदेश द्वारा व्यतिक्रम के कारण खारिज कर दिया गया था ।

10. तद्नुसार, निष्पादन कार्यवाहियां आरम्भ की गईं जिसमें आक्षेप उद्भूत किए गए और निष्पादन न्यायालय ने तारीख 3 जून, 1965 के आदेश द्वारा आक्षेपों को मंजूर कर लिया और निष्पादन में डिक्री को

अकृत अभिनिर्धारित किया । निष्पादन न्यायालय के उक्त आदेश के विरुद्ध फाइल 1965 की निष्पादन प्रथम अपील सं. 195 इस न्यायालय में लम्बित है ।

11. इसी बीच में, केन्द्रीय प्रशासनिक परिषद् के सदस्यों को अभिवाचित करने के लिए, जैसाकि दोनों पक्षकारों ने अपीलें फाइल की थीं को इस न्यायालय ने तारीख 31 मार्च, 1965 और तारीख 29 जुलाई, 1965 के आदेशों द्वारा नामंजूर कर दिया था । पूर्वोक्त आदेशों को माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत याचिका फाइल करते हुए चुनौती दी गई जिन्हें 1965 की सिविल अपील सं. 385 और 1965 की सिविल अपील सं. 366 में परिवर्तित कर दिया गया । माननीय उच्चतम न्यायालय ने पक्षकारों से विचार-विमर्श करने के पश्चात् तारीख 21 अक्तूबर, 1965 के आदेश द्वारा वादपत्र में संशोधन करने और वाद में कुछ अतिरिक्त प्रतिरक्षा जोड़ने के लिए वादियों को अनुज्ञा प्रदान कर दी । संशोधित वादपत्र और अभिवाचित पक्षकारों के लिखित कथन अभिलेख पर लिए गए और उच्च न्यायालय को वापस भेजने के लिए विचारण न्यायालय के निष्कर्षों हेतु 49 विवाद्यक विरचित किए गए । उच्च न्यायालय ने निचले न्यायालय के निष्कर्षों को प्राप्त करने के पश्चात् दोनों अपीलों की सुनवाई करने का निर्देश दिया । तथापि, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा सम्पूर्ण मुकदमे को यथाशीघ्र समाप्त करने के बारे में अभिव्यक्त आशा मिथ्या सिद्ध हुई क्योंकि आज की तारीख तक एक विवाद्यक के सिवाय अन्य विवाद्यक विनिश्चित नहीं किए गए हैं ।

12. प्रश्नगत आवेदन का विरोध करते हुए एस. एस. भट्टाचार्य, सहायक सचिव, केन्द्रीय प्रशासनिक परिषद् ने सभी प्रतिवादियों/ प्रत्यर्थियों की ओर से प्रतिनिधित्व हैसियत में एक प्रति-शपथपत्र फाइल किया जिसका प्रत्युत्तर भी फाइल किया गया ।

13. केन्द्रीय प्रशासनिक परिषद् के तारीख 8 अगस्त, 2010 के संकल्प को अभिलेख पर लाने की ईप्सा करते हुए, एस. एस. भट्टाचार्य, सहायक सचिव, केन्द्रीय प्रशासनिक परिषद्, राधा स्वामी सम्प्रदाय, स्वामी बाग, आगरा ने एक अन्य शपथपत्र फाइल किया जिसके द्वारा दयालबाग समूह द्वारा प्रार्थना करने और सत्संग तथा भंडारा करने की प्रस्थापना को स्वीकार नहीं करने का संकल्प लिया गया था । मेरा निष्कर्ष यह है कि उक्त शपथपत्र त्यक्त करने का कोई कारण नहीं है । मेरा निष्कर्ष यह है कि यह सुसंगत है । इसलिए, उक्त शपथपत्र अभिलेख पर

लिया जाता है । तद्नुसार, 2010 की आवेदन सं. 242260 को मंजूर किया जाता है ।

14. मैंने वादी-अपीलार्थी (आवेदकों) के विद्वान् काउंसेल श्री विपिन कुमार सक्सेना और प्रतिवादी-प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री नवीन सिन्हा, ज्येष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता श्री विपिन सिन्हा ने की, को सुना ।

15. वादी/अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री विपिन कुमार सक्सेना, प्रायिक, ऋजु और अति विनम्र हैं, किन्तु उन्होंने दृढ़तापूर्वक यह निवेदन किया कि राधा स्वामी सम्प्रदाय के दोनों समूह एक दूसरे से दुर्भावना रखते हैं और कम-से-कम प्रथम तीनों एस. एस. जी. एक दूसरे को सबक सिखाने में लगे हुए हैं और इस प्रकार, इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि उन्हें अपने सम्प्रदाय के सिद्धांतों के अनुसार समाधि पर आध्यात्मिक विकास करने और श्रद्धांजलि अर्पित करने तथा भंडारों और सत्संगों में भाग लेने की अनुज्ञा प्रदान की जाए । उपर्युक्त के अलावा क्योंकि इस वर्ष सम्प्रदाय के आरम्भ होने की 150वीं वर्षगांठ है इसलिए यह एक महान पर्व की घटना है और इस प्रकार, यह अतिआवश्यक है कि तारीख 20 अक्तूबर, 2010 और तारीख 28 अक्तूबर, 2010 (कुल 9 दिन) के बीच परम गुरु महाराज साहिब के भंडारे, तारीख 22 दिसम्बर, 2010 और 30 दिसम्बर, 2010 (कुल 9 दिन) के बीच परम गुरु हुजूर महाराज के भंडारे, वसंत 2011, तारीख 6 फरवरी से तारीख 11 फरवरी, 2011 (कुल 5 दिन) के बीच और होली 2011, तारीख 19 और 21 मार्च, 2011 (कुल 3 दिन) के विशेष अवसरों पर स्वामी जी महाराज, स्वामी बाग, आगरा की समाधि पर विनिर्दिष्टतः धार्मिक अनुष्ठानों में वादी-अपीलार्थी भाग ले । इसलिए, उन्हें इन प्रयोजनों के लिए अनुज्ञा दी जाए ।

16. दूसरी ओर, ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री नवीन सिन्हा ने यह दलील दी कि वादी/अपीलार्थियों को ऐसी कोई अनुज्ञा मंजूर नहीं की जानी चाहिए जब तक कि उन्हें स्वामी जी महाराज की समाधि पर या तो जाने या पूजा करने के लिए कोई वैध प्रवर्तनीय अधिकार नहीं हो और अपनी दलील के समर्थन में उन्होंने 1960 की प्रथम अपील सं. 398 में पारित तारीख 23 फरवरी, 1977 को इस न्यायालय के खंड न्यायपीठ द्वारा दिए गए विनिश्चय का मजबूती से अवलंब लिया ।

17. मैंने क्रमशः दोनों पक्षकारों की ओर से किए गए निवेदनों पर

विचार किया और उपर्युक्त निर्दिष्ट प्रथम अपील में पारित पूर्वोक्त निर्णय और आदेश का ध्यानपूर्वक परिशीलन किया जो 1956 की मूल वाद सं. 173 से उद्भूत हुआ था । जो उक्त वाद/अपील में उस समय के राधा स्वामी सम्प्रदाय के दो विरोधी समूहों के बीच इन्हीं सम्पत्तियों के बारे में था । इसमें अन्तर्ग्रस्त आधारभूत प्रश्न पक्षकारों के उन अधिकारों से संबंधित था जिसके द्वारा वे समाधि और अन्य पवित्र स्थानों पर आत्मचिन्तन तथा पूजा के प्रयोजन के लिए जाते और भंडारे में भाग लेते साथ ही केन्द्रीय प्रशासनिक परिषद् द्वारा पक्षकारों को समाधि पर जाने से रोकने, भंडारा आयोजित करने और समाधि स्थल पर धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने से अवरुद्ध करने के अधिकार से संबंधित था ।

18. खंड न्यायपीठ ने उपर्युक्त विवाद्यकों पर विचार करते हुए, इस प्रश्न पर भी विचार किया कि क्या उस वाद के वादी/अपीलार्थियों को समाधि पर जाने और पूर्वोक्त स्थानों, जो राधास्वामी सम्प्रदाय के अनुयायियों द्वारा पवित्र समझा जाता है, पर आयोजित भंडारों में भाग लेने का वैधतः प्रवर्तनीय अधिकार है । न्यायालय ने विस्तारपूर्वक चर्चा करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि समाधि और अन्य सम्पत्तियां जो विवाद की विषय-वस्तु हैं वह उस समय के एस. एस. जी. से अनन्य रूप से संबंधित हैं और यहां तक कि सम्प्रदाय के अनुयायी भी उस समय के एस. एस. जी. की अनुज्ञा के बिना उन सम्पत्तियों पर नहीं जा सकते थे । केन्द्रीय प्रशासनिक परिषद् को एस. एस. जी. द्वारा अपनी सम्पत्तियों के प्रबंध में सहायता करने के लिए गठित किया गया था । न्यायालय ने राधास्वामी सम्प्रदाय के विभिन्न धार्मिक पाठों और धर्मग्रंथों पर विचार करने तथा परीक्षा करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि एस. एस. जी. के नीति वचनों या शिक्षाओं से यह नहीं कहा जा सकता कि समाधि पर जाना राधास्वामी सम्प्रदाय का आन्तरिक भाग है, यद्यपि, ऐसा करना उसके अनुयायियों की प्रतिष्ठा या विशेषाधिकार का मामला हो सकता है किन्तु वह ऐसा सिविल अधिकार नहीं है जिसे न्यायालय में प्रवर्तनीय कराया जा सके । इसलिए, यदि एस. एस. जी. के विरुद्ध कोई अधिकार प्रवर्तनीय नहीं कराया जा सकता है तो उसे केन्द्रीय प्रशासनिक परिषद् के विरुद्ध भी प्रवर्तनीय नहीं कराया जा सकता है जिसने एस. एस. जी. की एवज में और उसकी छाया की तरह कार्य करते हुए प्राइवेट न्यास में सम्पत्ति धारित की है ।

19. न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है –

"जैसा कि हमारे द्वारा पूर्व में भी उपदर्शित किया जा चुका है, जब तक अपीलार्थियों को समाधि पर जाने का कोई विधिक अधिकार नहीं है तब तक वे इसे प्रत्यर्थियों के विरुद्ध प्रवर्तित नहीं करा सकते हैं । चूंकि उस समय के एस. एस. जी. उन सम्पत्तियों जिसमें समाधि भी सम्मिलित हैं, का एकमात्र मालिक था और चूंकि यह उस समय के एस. एस. जी. की इच्छा और अनुकम्पा पर निर्भर था कि वह अपीलार्थियों को समाधि पर जाने या नहीं जाने को मंजूर करते, इसलिए, यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि अपीलार्थी समाधि पर जाने के लिए विधिक अधिकार रखते हैं । सब कुछ अनुज्ञा पर निर्भर करता है, अन्य कोई रास्ता नहीं है अन्यथा उन्हें कोई विधिक अधिकार नहीं है । मात्र यह तथ्य कि यह उनकी शिक्षाओं में अन्तर्विष्ट है कि समाधि पवित्र वस्तु है जिसे कोई भी श्रद्धा से देख सकता है, भी अपीलार्थियों की कोई सहायता नहीं कर सकता है ।"

न्यायालय ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला –

"इसलिए, हमारी राय में, अभिलेख पर की सामग्रियों से यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि वादियों को वादपत्र में उल्लिखित समाधियों और अन्य पवित्र स्थानों पर जाने का कोई विधिक और प्रवर्तनीय अधिकार है ।"

20. इसी प्रकार का मत भंडारा आयोजित करने के संबंध में और धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने के अधिकार के संबंध में और उन स्थानों पर पूजा करने के संबंध में भी व्यक्त किया गया ।

21. संक्षेप में, खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि पवित्र स्थल जिसमें स्वामी जी महाराज, स्वामी बाग, आगरा की समाधि सम्मिलित है, उस समय के एस. एस. जी. की प्राइवेट सम्पत्तियां हैं जिनका उनकी ओर से केन्द्रीय प्रशासनिक परिषद् द्वारा प्रबन्ध किया जाता है और अन्य किसी व्यक्ति द्वारा नहीं, यहां तक कि राधास्वामी सम्प्रदाय के अनुयायी भी केन्द्रीय प्रशासनिक समिति की अनुज्ञा के बिना उन स्थलों पर नहीं जा सकते और यह कि उक्त वाद/अपील के वादी-अपीलार्थियों को भी इन स्थानों पर आयोजित भंडारों/धार्मिक अनुष्ठानों में जाने या भाग लेने का कोई प्रवर्तनीय अधिकार नहीं है ।

22. श्री विपिन कुमार सक्सेना ने उपर्युक्त विनिश्चय और उसी बैठक में चढ़ावे के उद्ग्रहण पर सामंजस्य स्थापित करते हुए इस बात पर जोर

दिया कि पूर्वोक्त खंड न्यायालय के निष्कर्ष प्रतिकूल हैं और राधास्वामी सम्प्रदाय के कतिपय मान्यताप्राप्त और प्रमाणिक धार्मिक पाठों की अवहेलना में अभिलिखित किए गए हैं और यह कि पूर्वोक्त विनिश्चय वर्तमान वादियों/ अपीलार्थियों पर बाध्यकर नहीं हैं ।

23. मैं उपर्युक्त निवेदनों से किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं हूं । प्रथमतः, यह न्यायालय संबंधित खंड न्यायपीठ द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों या अधिकथित विनिश्चयाधार पर विचार नहीं कर सकता है । यह राधास्वामी सम्प्रदाय के ही दो विरोधी समूहों के बीच विवाद्यक है । पूर्ववर्ती वाद में पक्षकार दो परस्पर विरोधी समूहों की ओर से प्रतिनिधि की हैसियत में उपस्थित हुए थे । वर्तमान वाद/अपील में भी इसी प्रकार की प्रास्थिति है । यहां यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि प्रतिनिधित्व उस पूरे समूह पर आबद्धकर होता है जिसका वे इस प्रकार प्रतिनिधित्व करते हैं । वादी/ अपीलार्थियों ने स्वयमेव उस समूह से भिन्न होने का दावा नहीं किया है जिसका पूर्व में प्रतिनिधित्व किया गया था । वे वस्तुतः उसी समूह के अनुयायी हैं ।

24. इस संदर्भ में, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 1 नियम 8(6) सुसंगत और महत्वपूर्ण है । इसका स्पष्टतः आधार तत्व यह है कि एक वाद में पारित डिक्री उन सभी व्यक्तियों पर आबद्धकर होगी जिनकी ओर से इसे संस्थित किया गया है या इसका प्रतिवाद किया गया है, जैसी भी स्थिति हो । वर्तमान वाद के वादी/अपीलार्थियों का एक ही हित है यद्यपि पूर्ववर्ती वाद के वादियों का वाद हेतुक भिन्न और पृथक् हो सकता है ।

25. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, मेरी यह राय है कि जहां पक्षकार प्रतिनिधि की हैसियत में उपस्थित हुए हैं न कि व्यक्तिगत रूप से तो जैसा कि पूर्ववर्ती न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि है, यद्यपि निष्कर्ष कठोर अर्थों में प्राग न्याय के रूप में परिवर्तित नहीं हो सकते हैं फिर भी वे सुनिश्चित रूप से पूर्व-निर्णय के रूप में आबद्धकर हो सकते हैं । खंड न्यायपीठ ने जैसा कि पूर्व में कथित किया है, स्पष्टतः यह अभिनिर्धारित किया है कि किसी भी व्यक्ति को केन्द्रीय प्रशासनिक परिषद् की अनुज्ञा के सिवाय राधा स्वामी सम्प्रदाय के किसी भी पवित्र जगहों या स्थानों पर आयोजित धार्मिक या अनुष्ठानों या भंडारों में जाने या भाग लेने का कोई वैधतः प्रवर्तनीय अधिकार नहीं है । यह यथार्थ विनिश्चयाधार होने के नाते पूर्ण

बल के साथ लागू होगा और मैं कम-से-कम यह अभिनिर्धारित करने के लिए बाध्य हूं कि कोई भी प्रथमदृष्ट्या मामला वादियों/अपीलार्थियों के पक्ष में नहीं बनाया गया है अथवा यह कि उनके पक्ष में सुविधा का संतुलन है ।

26. स्वीकृततः, केन्द्रीय प्रशासनिक परिषद् ने तारीख 8 अगस्त, 2010 के संकल्प द्वारा वादी/अपीलार्थियों की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया था ।

27. उपर्युक्त के होते हुए भी, श्री सिन्हा ने आरम्भ में ही अतिनिष्पक्ष रूप से निवेदन किया था कि इस बारे में कोई समस्या नहीं हो सकती है यदि अनुयायी व्यक्तिगत रूप से समाधि पर जाते हैं और पवित्र धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेते हैं जो विनिन्न शुभ दिनों में आयोजित किया जाता है ।

28. यह उल्लेख करना लाभदायक हो सकता है कि वादी/अपीलार्थियों ने 5 लाख अनुयायियों के लिए और उनकी ओर से उपर्युक्त अनुज्ञा की ईप्सा की है । व्यक्तियों के इतने बड़े समूहों को भी इस प्रकार जाने और पूजा करने के अधिकार को लोक व्यवस्था के हित में भी मंजूर नहीं किया जा सकता है । यह सामान्य ज्ञान की बात है कि धार्मिक और सांस्कृतिक समुदायों के इतने बड़े समूहों को साधारणतया नियंत्रित नहीं किया जा सकता है और यह स्थानीय प्रशासन के नियंत्रण के बाहर हो जाता है । इसलिए, यह हमेशा ही न्याय के हित में होता है कि इस परिस्थिति से बचा जाए । इसका परिणाम यह हो सकता है कि इससे किसी विशिष्ट समुदाय या लोगों के समूह के अधिकारों को छोड़ना पड़े किन्तु व्यक्तिगत अधिकार, या विशिष्ट समुदाय के अधिकार या व्यक्तियों के वर्ग के अधिकार को लोकहित के माध्यम से प्रदान किया जाता है और विधि व्यवस्था की स्थिति के साथ ही लोक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए व्यक्तियों के छोटे समूह को अनुमति दी जा सकती है ।

29. पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए मेरी यह सुविचारित राय है कि वादी-अपीलार्थियों के पक्ष में ऐसा कोई प्रथमदृष्ट्या मामला नहीं बनता है जिससे कि उन्हें सम्प्रदाय के आरम्भ होने की 150वीं वर्षगांठ के विशेष अवसरों पर भी स्वामी जी महाराज, स्वामी बाग, आगरा की समाधि पर जाने और पूजा करना मंजूर किया जाए अतएव, वे उक्त अधिकार का प्रयोग मात्र केन्द्रीय प्रशासनिक परिषद् की अनुज्ञा से ही कर सकते हैं ।

30. माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा विरचित अतिरिक्त विवाद्यकों पर अभिलिखित निष्कर्षों के मामलों की प्राप्ति पर निचले न्यायालय को यह निदेश दिया जाता है कि वे मामले पर दिन-प्रति-दिन के आधार पर सुनवाई करें और अतितत्परतापूर्वक विधि के अनुसरण में प्रत्येक विवाद्यक पर निष्कर्ष अभिलिखित करना सुनिश्चित करें यदि ऐसा करने में उन्हें कोई विधिक बाधा नहीं होती है । पक्षकारों को भी न्यायालय के साथ सहयोग करने की सलाह दी जाती है और इस न्यायालय में लम्बित प्रथम अपील का निष्पादन प्रथमतः और यथाशीघ्र विनिश्चित किया जाएगा ।

31. तद्नुसार, 2010 के आवेदन सं. 67418 में कोई सार नहीं है और इसे उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों के साथ नामंजूर किया जाता है ।

32. 2010 का आवेदन सं. 217022 विफल होता है और इसमें कोई आदेश पारित करने की आवश्यकता नहीं है । इसे भी निपटाया जाता है ।

अपील तद्नुसार, निपटाई गई ।

क.

(2013) 1 सि. नि. प. 26 **इलाहाबाद**

राम दरस यादव

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

तारीख 17 सितम्बर, 2010

न्यायमूर्ति अमरेश्वर प्रताप साही

उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड नियम, 1998 – नियम 12 और 14 – प्राध्यापक के रूप में प्रोन्नति – सक्षम प्राधिकारी द्वारा पांच वर्ष के पश्चात् अनुमोदन – भूतलक्षी प्रभाव से फायदे दिए जाने के लिए दावा – इस संबंध में किसी नियम में कोई उपबंध न किया जाना – याची को किसी प्रतिकूल नियम के अभाव में कल्पित प्रोन्नति का फायदा प्रदान नहीं किया जा सकता – याची युक्तियुक्त समय के भीतर न्यायालय में समावेदन कर सकता था ।

याची की प्राध्यापक के रूप में प्रोन्नति की गई थी तथापि, अनुमोदन

पांच वर्ष की अवधि के पश्चात् किया गया था । याची ने भूतलक्षी प्रभाव से अनुमोदन प्रदान करके फायदे देने का निदेश करने के लिए वर्तमान सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका फाइल की । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – परस्पर विरोधी दलीलों पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि पूर्वोक्त नियम प्राधिकारियों से विहित समय के भीतर कार्रवाई करने की अपेक्षा करते हैं । प्रत्येक कार्रवाई करने में विलंब किया गया है और इसलिए प्राधिकारी युक्तियुक्त समय के भीतर किसी पदधारी के दावे का विनिश्चय करने के लिए बाध्यताधीन हैं । तथापि, किसी प्रतिकूल नियम के अभाव में याची द्वारा यथा अनुरोध किए गए कल्पित प्रोन्नति के फायदे को मंजूर नहीं किया जा सकता । यदि याची, प्रत्यर्थियों की ओर से किसी विलंब से व्यथित हुआ हो तो उसे शीघ्रातिशीघ्र रिट याचिका फाइल करके इस न्यायालय में समावेदन करना चाहिए था और पांच वर्ष के लंबे समय तक प्राधिकारियों के विनिश्चय का इंतजार नहीं करना चाहिए था । नियम भी विचार करने की उस रीति के बारे में उपबंध करते हैं जिनके अनुसार प्रबंध समिति द्वारा जिला विद्यालय निरीक्षक के निदेशों के आधार पर विहित प्रोफार्मा में नियुक्ति पत्र जारी किया जाएगा । प्रबंध समिति कोई नियुक्ति पत्र जारी करने की स्थिति में नहीं है जब तक कि सक्षम प्राधिकारी नियम 14 के साथ पठित धारा 12 के अधीन कोई विधिमान्य चयन नहीं करता है । इसे ध्यान में रखते हुए ऐसे किसी फायदे को प्रदान करना प्रबंध समिति के लिए संभव नहीं होगा, जब तक कि नियुक्ति का ऐसा पत्र जारी न किया गया हो, इसलिए याची प्रस्ताव की तारीख से सारभूत आधार पर पद पर होने की उपधारणा नहीं कर सकता । (पैरा 6, 7 और 8)

आरंभिक (सिविल) प्रकीर्ण रिट अधिकारिता : 2008 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 48251.

संविधान,1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री विकास तिवारी

प्रत्यर्थी की ओर से श्री शैलेश पाण्डे

न्यायमूर्ति अमरेश्वर प्रताप साही – याची को उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा (सेवा चयन बोर्ड) अधिनियम, 1982 और इसके अधीन विरचित उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड नियम, 1998 द्वारा विनियमित एक इण्टरमीडिएट विद्यालय में नागरिक शास्त्र विषय में प्राध्यापक के रूप में

प्रोन्नति दी गई है । प्रोन्नति का नियम, 1998 के नियमों का नियम 14 है जो इस प्रकार है –

"**नियम 14. प्रोन्नति द्वारा भर्ती की प्रक्रिया** – (1) जहां कोई रिक्ति प्रोन्नति द्वारा भरी जानी है वहां प्रशिक्षित स्नातक श्रेणी या अध्यापन ग्रेड प्रमाणपत्र यदि कोई हो, में कार्य कर रहे ऐसे सभी अध्यापक जो उस पद के लिए विहित अर्हताएं रखते हैं, और जिन्होंने भर्ती वर्ष के पहले दिन इसी हैसियत में पांच वर्ष की नियमित सेवा पूरी कर ली हो, के नामों पर, यथास्थिति, प्राध्यापक ग्रेड या प्रशिक्षित स्नातक ग्रेड की प्रोन्नति के लिए, उनके द्वारा आवेदन किए बिना विचार किया जाएगा ।

टिप्पण – इस उप-नियम के प्रयोजन के लिए, किसी अन्य मान्यताप्राप्त संस्था में की गई नियमित सेवा पात्रता के लिए गणना में ली जाएगी, जब तक कि किसी निचली सेवा से हटाने, पदच्युत करने या अवनत करने के कारण सेवा में व्यवधान न हुआ हो ।

(2) प्रोन्नति के लिए मानदंड ज्येष्ठता होगी बशर्ते कि अयोग्य होने के कारण नामंजूर न किया गया हो ।

(3) प्रबंधतंत्र उप-नियम (1) में निर्दिष्ट अध्यापकों की एक सूची तैयार करेगा, और चरित्र पंजिका सहित ज्येष्ठता सूची, सेवा अभिलेखों तथा परिशिष्ट 'क' में दिए गए प्रोफार्मा में विवरण की एक प्रति निरीक्षक को भेजेगा ।

(4) निरीक्षक उप-नियम (3) के अधीन प्रबंधतंत्र से सूची की प्राप्ति के तीन सप्ताह के भीतर, अपने कार्यालय के अभिलेख से तथ्यों को सत्यापित करेगा और संयुक्त निदेशक को सूची भेजेगा ।

(5) संयुक्त निदेशक उप-नियम (3) में निर्दिष्ट अभिलेखों के आधार पर अभ्यर्थियों के मामलों पर विचार करेगा और ऐसी अतिरिक्त जानकारी की मांग कर सकेगा जिसे वह आवश्यक समझे । संयुक्त निदेशक धारा 12 की उप-धारा (1) में निर्दिष्ट चयन समिति के समक्ष अभिलेख प्रस्तुत करेगा और समिति की सिफारिश के बाद प्रबंधतंत्र को एक प्रति के साथ निरीक्षक को एक मास के भीतर चयन किए गए अभ्यर्थियों की सूची भेजेगा ।

(6) निरीक्षक उप-नियम (5) के अधीन संयुक्त निदेशक से सूची

प्राप्ति के दस दिन के भीतर, उस संस्था के प्रबंधतंत्र को चयन किए गए अभ्यर्थियों के नाम भेजेगा जिसने रिक्ति अधिसूचित की है और प्रबंधतंत्र तद्नुसार अपनी प्रस्थापना के अधीन प्राधिकार के आधार पर ऐसे अभ्यर्थी को परिशिष्ट 'च' में दिए गए प्रोफार्मा में नियुक्ति आदेश जारी करेगा ।"

2. अतः चयन कानूनी समिति द्वारा धारा 12 के अधीन किया जाएगा और न कि प्रबंधतंत्र द्वारा । अधिनियम, 1982 की धारा 12 इस प्रकार है –

धारा 12. प्रोन्नति द्वारा चयन की प्रक्रिया – (1) प्रत्येक क्षेत्र के लिए, एक चयन समिति होगी, जो अध्यापक के पद की प्रोन्नति के लिए अभ्यर्थियों का चयन करेगी, जो निम्नलिखित से मिलकर बनेगी-

(i) क्षेत्रीय संयुक्त शिक्षा निदेशक ---- अध्यक्ष

(ii) क्षेत्र के सरकारी इंटर कालेज का ज्येष्ठतम प्रधानाचार्य --- सदस्य

(iii) संबंधित कालेज का जिला निरीक्षक ---- सदस्य/सचिव

(2) अध्यापक के पद की प्रोन्नति के लिए अभ्यर्थियों के चयन की प्रक्रिया ऐसी होगी जैसी कि विहित की गई है ।

3. याची की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि समिति का प्रस्ताव तारीख 26 मई, 2003 को भेजा गया था और पांच वर्ष के इंतजार के बाद सक्षम प्राधिकारी द्वारा याची के दावा का अनुमोदन किया गया है जिससे न केवल धनीय हानि हुई है अपितु प्राध्यापक के ग्रेड में ज्येष्ठता सहित अन्य हानि भी हुई है । अतः विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि प्राधिकारी को उपर्युक्त नियमों के अधीन उपबंधित अवधि का युक्तियुक्त रूप से अर्थ लगाकर भूतलक्षी प्रभाव से अनुमोदन मंजूर करना चाहिए था ।

4. विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि कल्पित प्रोन्नति पूर्ववर्ती तारीख से मंजूर की जा सकती है और इसलिए आक्षेपित आदेश उसी तारीख से संशोधित किए जाने योग्य है जिस तारीख से याची को प्रबंध समिति के प्रस्ताव के अधीन प्रोन्नति के लिए हकदार पाया गया है ।

5. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि ऐसे किसी

उपबंध को इस प्रकार विद्यमान नहीं माना जा सकता जिससे कि भूतलक्षी प्रभाव से कल्पित प्रोन्नति दी जाए और अन्यथा भी नियम जैसे कि बनाए गए हैं, उपरोक्त धारा 12 के अधीन सक्षम प्राधिकारी द्वारा चयन के पश्चात् नियुक्ति पत्र जारी करने के लिए उपबंध करते हैं । तत्पश्चात् ही विहित प्ररूप में नियम 14 के अधीन परिवीक्षा पर नियुक्ति की जाएगी ।

6. परस्पर विरोधी दलीलों पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि पूर्वोक्त नियम प्राधिकारियों से विहित समय के भीतर कार्रवाई करने की अपेक्षा करते हैं । प्रत्येक कार्रवाई करने में विलंब किया गया है और इसलिए प्राधिकारी युक्तियुक्त समय के भीतर किसी पदधारी के दावे का विनिश्चय करने के लिए बाध्यताधीन हैं । तथापि, किसी प्रतिकूल नियम के अभाव में याची द्वारा यथा अनुरोध किए गए कल्पित प्रोन्नति के फायदे को मंजूर नहीं किया जा सकता ।

7. यदि याची, प्रत्यर्थियों की ओर से किसी विलंब से व्यथित हुआ हो तो उसे शीघ्रातिशीघ्र रिट याचिका फाइल करके इस न्यायालय में समावेदन करना चाहिए और पांच वर्ष के लंबे समय तक प्राधिकारियों के विनिश्चय का इंतजार नहीं करना चाहिए ।

8. नियम भी विचार करने की उस रीति के बारे में उपबंध करते हैं जिसके पश्चात् प्रबंध समिति द्वारा जिला विद्यालय निरीक्षक के निदेशों के आधार पर विहित प्रोफार्मा में नियुक्ति पत्र जारी किया जाएगा । प्रबंध समिति कोई नियुक्ति पत्र जारी करने की स्थिति में नहीं है जब तक कि सक्षम प्राधिकारी नियम 14 के साथ पठित धारा 12 के अधीन कोई विधिमान्य चयन नहीं करता है । इसे ध्यान में रखते हुए ऐसे किसी फायदे को प्रदान करना प्रबंध समिति के लिए संभव नहीं होगा जब तक कि नियुक्ति का ऐसा पत्र जारी न किया गया हो, इसलिए याची प्रस्ताव की तारीख से सारभूत आधार पर पद पर होने की उपधारणा नहीं कर सकता ।

9. तद्नुसार, दी गई दलील, नियम की संक्षिप्त प्रकृति को ध्यान में रखते हुए मंजूर नहीं की जा सकती ।

10. रिट याचिका में गुणागुण की कमी है और इस प्रकार यह खारिज की जाती है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मही./मह.

नवाब मोटर्स (मैसर्स)

बनाम

मैसर्स मैटल फेब इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड

तारीख 27 सितम्बर, 2010

न्यायमूर्ति राकेश तिवारी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 9, नियम 3 और 4 तथा धारा 151 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 – धारा 5] – व्यतिक्रम के आधार पर वाद की खारिजी – धारा 5 के आवेदन के साथ प्रत्यावर्तन आवेदन – मंजूरी – रिट याचिका में मंजूरी आदेश को आक्षेपित किया जाना – न्यायालय को आदेश वापस लेने का विवेकाधिकार प्राप्त है – अतः ऐसे आदेश को अवैध और मनमाना नहीं माना जा सकता – याची गुण-दोष के आधार पर मामले का विरोध कर सकता है ।

2007 का वाद सं. 5 जो याची मैसर्स नवाब मोटर्स के विरुद्ध सम्पत्ति से बेदखली के लिए फाइल किया गया था, तारीख 23 सितम्बर, 2008 को निचले न्यायालय द्वारा व्यतिक्रम के कारण खारिज कर दिया गया था क्योंकि उस दिन न तो वादी और न ही प्रतिवादी विरोधी पक्षकार उपस्थित हुए थे । प्रत्यावर्तन आवेदन फाइल करने पर मंजूर किया गया था । जिससे व्यथित होकर याची ने वर्तमान सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका फाइल की । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – रिट याचिका में तारीख 28 अगस्त, 2010 के दूसरे आक्षेपित आदेश द्वारा आवेदन पेपर सं. 9-सी तारीख 23 सितम्बर, 2008 के आदेश को वापस लेते हुए और मामले को मूल संख्या में प्रत्यावर्तित करते हुए मंजूर किया गया था । निचले न्यायालय ने इस तथ्य का उल्लेख किया कि वादी के अनुसार विवाद से संबंधित वाद के पक्षकारों ने मामले में समझौता कर लिया था और तत्पश्चात् प्रत्यर्थी ने मामले के स्थगन के लिए तारीख 12 अगस्त, 2008 को आवेदन फाइल किया था और उक्त परिस्थितियों में मामला तारीख 23 सितम्बर, 2008 के लिए नियत किया गया था । न्यायालय ने इस तथ्य का भी उल्लेख किया कि चूंकि करार के लिए बातचीत आगे बढ़ी थी इसलिए वाद के पक्षकार तारीख 23 सितम्बर,

2008 को उपस्थित नहीं हुए और इसलिए वाद सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 3 के अधीन खारिज कर दिया गया था । किन्तु वाद खारिज होने के पश्चात् वाद का प्रतिवादी पलट गया था और वह मामले में समझौता नहीं करना चाहता था । पूर्वोक्त परिस्थितियों में वादी ने यह आवेदन फाइल किया था कि वह तारीख 23 सितम्बर, 2008 को इस सद्भाविक विश्वास से उपस्थित नहीं हुआ था कि समझौते की बातचीत चल रही थी और इस कारण से प्रत्यर्थी भी उस तारीख को उपस्थित नहीं हुआ था । पक्षकारों को सुनने के पश्चात् प्रत्यावर्तन आवेदन मंजूर किया गया था और निचले न्यायालय ने अभिलेख का परिशीलन के पश्चात् वादी के इस कथन पर विश्वास किया कि पक्षकार इसलिए उपस्थित नहीं हुए थे क्योंकि समझौते पर बातचीत आगे बढ़ी थी जिसका निचले न्यायालय के अभिलेख से समर्थन होता है और इन परिस्थितियों में आवेदन पेपर सं. 9-सी मंजूर किया गया । याची के काउंसेल की यह दलील निचले न्यायालय ने विवेक का प्रयोग किए बिना विलंब माफी आवेदन और प्रत्यावर्तन आवेदन मंजूर किया है, गलत प्रतीत होती है और अभिलेख पर की सामग्री के विरुद्ध है । न्यायालय को आदेश को वापस लेने का विवेकाधिकार प्राप्त है और उसने दर्शाए गए कारण से संतुष्ट होने के पश्चात् आदेश वापस लिए हैं । इन तथ्यों और परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता कि आक्षेपित आदेश अवैध और मनमाने हैं । जहां तक याची के काउंसेल की इस दलील का संबंध है कि करार उस पर आबद्धकर नहीं है, वह गुण-दोष के आधार पर वाद में पैरवी कर सकता है । (पैरा 9, 10 और 11)

आरंभिक (सिविल) प्रकीर्ण रिट : अधिकारिता — **2010 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 58169.**

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका ।

याची की ओर से — श्री जमाल खान

प्रत्यर्थी की ओर से — श्री उमा नाथ पाण्डे, मुख्य स्थायी काउंसेल

न्यायमूर्ति राकेश तिवारी – याची के विद्वान् काउंसेल को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया ।

2. 2007 का वाद सं. 5 जो याची मैसर्स नवाब मोटर्स के विरुद्ध सम्पत्ति से बेदखली के लिए फाइल किया गया था, तारीख 23 सितम्बर,

2008 को निचले न्यायालय द्वारा व्यतिक्रम के कारण खारिज कर दिया गया था क्योंकि उस दिन न तो वादी और न ही प्रतिवादी विरोधी पक्षकार उपस्थित हुए थे ।

3. वादी द्वारा उपर्युक्त वाद में तारीख 10 मार्च, 2010 को सिविल प्रकिया संहिता की धारा 151 के साथ पठित आदेश 9, नियम 4 के अधीन प्रत्यावर्तन आवेदन और शपथपत्र के साथ परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अधीन आवेदन फाइल किया गया था ।

4. याची के काउंसेल ने यह दलील दी कि प्रत्यर्थी ने सम्पत्ति के संबंध में अनुज कपूर और अनिल कपूर के हक में विक्रय करार किया है और प्रत्यर्थी ने उनसे 45,00,000/- रुपए प्राप्त किए हैं । अनुज कपूर और अनिल कपूर ने याची से कब्जा भी ले लिया है ।

5. याची के काउंसेल ने मैसर्स मैटल फेब इंडस्ट्रीज बनाम मैसर्स नवाब मोटर्स, 2010 के प्रकीर्ण मामला सं. 35 में आवेदन पेपर सं. 4-सी पर तारीख 17 मई, 2010 को पारित आदेश और मैसर्स मैटल फेब इंडस्ट्रीज बनाम मैसर्स नवाब मोटर्स, 2010 के प्रकीर्ण मामला सं. 61 में आवेदन पेपर सं. 9-सी पर तारीख 28 अगस्त, 2010 को पारित आदेश को आक्षेपित किया है ।

6. तारीख 17 मई, 2010 के आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गई है कि निचले न्यायालय ने तथ्यों का मूल्यांकन किए बिना प्रत्यावर्तन के आवेदन में किए गए प्रकथनों को स्वीकार करते हुए प्रत्यर्थी के विलंब माफी आवेदन को मंजूर करने में अवैधता कारित की है ।

7. तारीख 28 अगस्त, 2010 के आदेश को इस आधार पर आक्षेपित किया गया है कि निचले न्यायालय ने प्रत्यावर्तन के आवेदन में किए गए प्रकथनों को स्वीकार करते हुए प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए प्रत्यावर्तन आवेदन को अवैध रूप से मंजूर किया है । उनके अनुसार, करार पर प्रत्यर्थी और वाद कार्यवाहियों के तृतीय पक्षकार के हस्ताक्षर हुए थे और इसलिए याची उससे आबद्ध नहीं है ।

8. तारीख 17 मई, 2010 के आदेश का परिशीलन करने से यह उपदर्शित होता है कि न्यायालय ने पक्षकारों को सुनने के पश्चात् आदेश पारित किया था और यह निष्कर्ष निकाला था कि दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष पक्षकारों के बीच हुए तारीख 19 जनवरी, 2009 के करार समझौते का परिशीलन करने से यह स्पष्ट होता है कि पक्षकार मध्यस्थता

सुलह कार्यवाहियों के माध्यम से अपने विवाद का निपटारा करने के लिए सहमत हुए थे । यह प्रतीत होता है कि पक्षकारों ने अपने विवाद का पारस्परिक रूप से निपटारा कर लिया था और उन्होंने तारीख 19 जनवरी, 2007 के करार और तारीख 13 अप्रैल, 2009 के परिशिष्ट के निबंधनों में डिक्री पारित करने के लिए सिविल प्रकिया संहिता की धारा 151 के साथ पठित आदेश 23, नियम 3 के अधीन एक संयुक्त आवेदन फाइल किया था । पूर्वोक्त आधार पर, निचले न्यायालय ने आवेदन पेपर सं. 4-सी मंजूर कर लिया और आवेदन फाइल करने में हुए विलंब को माफ कर दिया ।

9. रिट याचिका में तारीख 28 अगस्त, 2010 के दूसरे आक्षेपित आदेश द्वारा आवेदन पेपर सं. 9-सी तारीख 23 सितम्बर, 2008 के आदेश को वापस लेते हुए और मामले को मूल संख्या में प्रत्यावर्तित करते हुए मंजूर किया गया था । निचले न्यायालय ने इस तथ्य का उल्लेख किया कि वादी के अनुसार विवाद से संबंधित वाद के पक्षकारों ने मामले में समझौता कर लिया था और तत्पश्चात् प्रत्यर्थी ने मामले के स्थगन के लिए तारीख 12 अगस्त, 2008 को आवेदन फाइल किया था और उक्त परिस्थितियों में मामला तारीख 23 सितम्बर, 2008 के लिए नियत किया गया था । न्यायालय ने इस तथ्य का भी उल्लेख किया कि चूंकि करार के लिए बातचीत आगे बढ़ी थी इसलिए वाद के पक्षकार तारीख 23 सितम्बर, 2008 को उपस्थित नहीं हुए और इसलिए वाद सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 3 के अधीन खारिज कर दिया गया था । किन्तु वाद खारिज होने के पश्चात् वाद का प्रतिवादी पलट गया था और वह मामले में समझौता नहीं करना चाहता था । पूर्वोक्त परिस्थितियों में वादी ने यह आवेदन फाइल किया था कि वह तारीख 23 सितम्बर, 2008 को इस सद्भाविक विश्वास से उपस्थित नहीं हुआ था कि समझौते की बातचीत चल रही थी और इस कारण से प्रत्यर्थी भी उस तारीख को उपस्थित नहीं हुआ था ।

10. पक्षकारों को सुनने के पश्चात् प्रत्यावर्तन आवेदन मंजूर किया गया था और निचले न्यायालय ने अभिलेख का परिशीलन के पश्चात् वादी के इस कथन पर विश्वास किया कि पक्षकार इसलिए उपस्थित नहीं हुए थे क्योंकि समझौते पर बातचीत आगे बढ़ी थी जिसका निचले न्यायालय के अभिलेख से समर्थन होता है और इन परिस्थितियों में आवेदन पेपर सं. 9-सी मंजूर किया गया ।

11. याची के काउंसेल की यह दलील निचले न्यायालय ने विवेक का प्रयोग किए बिना विलंब माफी आवेदन और प्रत्यावर्तन आवेदन मंजूर किया है, गलत प्रतीत होती है और अभिलेख पर की सामग्री के विरुद्ध है । न्यायालय को आदेश को वापस लेने का विवेकाधिकार प्राप्त है और उसने दर्शाए गए कारण से संतुष्ट होने के पश्चात् आदेश वापस लिए हैं । इन तथ्यों और परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता कि आक्षेपित आदेश अवैध और मनमाने हैं । जहां तक याची के काउंसेल की इस दलील का संबंध है कि करार उस पर आबद्धकर नहीं है, वह गुण-दोष के आधार पर वाद में पैरवी कर सकता है ।

12. ऊपर उल्लिखित कारणों से मुझे आक्षेपित आदेशों में कोई अनियमितता या अवैधता प्रतीत नहीं होती है । तद्नुसार याचिका खारिज की जाती है । निचला न्यायालय इस आदेश में अभिव्यक्त मत से प्रभावित हुए बिना मामले में पूर्णतया विधि के अनुसार कार्यवाही करेगा । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मही./मह.

(2013) 1 सि. नि. प. 35 **इलाहाबाद**

शांति देवी (श्रीमती)

बनाम

हनीफ

तारीख 4 अक्तूबर, 2010

न्यायमूर्ति राकेश तिवारी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 9, नियम 13 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 – धारा 5] – सिविल वाद – एकपक्षीय निर्णय और डिक्री – एक वर्ष आठ मास के पश्चात् एकपक्षीय डिक्री को अपास्त करने के लिए आवेदन – खारिजी – एकपक्षीय आदेश को अपास्त करने के लिए आवेदन युक्तियुक्त अवधि के भीतर फाइल किया जाना चाहिए – जहां अस्पष्टीकृत अत्यधिक विलंब से आवेदन फाइल किया गया हो वहां न्यायालय द्वारा आवेदन की खारिजी को

अनुचित या अनियमित या मनमाना नहीं कहा जा सकता ।

याची ने एकपक्षीय निर्णय और आदेश को अपास्त करने हेतु आवेदन फाइल किया था जो खारिज कर दिया गया । इस संबंध में फाइल किया गया पुनरीक्षण आवेदन भी खारिज कर दिया गया जिससे व्यथित होकर याची-प्रतिवादी ने यह सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका फाइल की । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – आदेश 9 के नियम 13 के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि जहां न्यायालय का प्रतिवादी के विरुद्ध एकपक्षीय डिक्री को अपास्त करने के लिए यह समाधान हो जाता है कि समनों की विधिवत् तामील नहीं हुई है और उसे किसी पर्याप्त कारण से रोका गया था वहां वाद को सुनने के लिए बुलाया जाएगा । यद्यपि आदेश 9, नियम 13 के अधीन मामले के प्रत्यावर्तन के लिए उदार दृष्टिकोण अपेक्षित है, तथापि, न्यायालय को कारण की पर्याप्तता के बारे में अपना समाधान करना चाहिए । वर्तमान मामले में निचले न्यायालय ने यह पाया है कि आदेश को वापस लेने के लिए आवेदन में दिया गया स्पष्टीकरण यह है कि याची को तारीख 21 नवम्बर, 2009 को एकपक्षीय डिक्री के बारे में जानकारी प्राप्त हुई और उससे पूर्व दिसम्बर, 2008 में याची के पति की मृत्यु हो गई थी तथा उसके जीवन के दौरान पति बाबूलाल मामले की पैरवी कर रहा था और उसकी मृत्यु के पश्चात् मामले की पैरवी करने के लिए कोई नहीं था तथा तारीख 22 मार्च, 2004 को वाद एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया था । पक्षकारों पर साधारण (सिविल) नियमों के नियम 89-क के अधीन सूचना की तामील की जानी चाहिए थी किन्तु किसी सूचना की तामील नहीं की गई तथा मामला किसी नोटिस के बिना स्थानांतरित कर दिया गया था, किए गए प्रकथन अपर्याप्त थे और प्रकथन पर्याप्त नहीं थे । न्यायालय ने यह निश्चित निष्कर्ष निकाला कि आदेश लेने के लिए आवेदन अस्पष्ट कमियों से ग्रस्त था । कार्यवाहियों में उससे पहले ही एकपक्षीय कार्यवाही किए जाने का आदेश पारित किया जा चुका था जब मामला दूसरे न्यायालय में स्थानांतरित किया गया था । याची पर समन तामील किए गए थे और उसके काउंसेल ने मामले में पैरवी की थी । यह अविश्वसनीय है कि याची और काउंसेल ने पश्चात्वर्ती तारीख पर यह जानने का प्रयत्न नहीं किया कि क्या आदेश पारित किए गए हैं जब एकपक्षीय कार्यवाहियां की गई हैं वह भी तारीख 25 नवम्बर, 2003 से इतने वर्षों तक । निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित आक्षेपित आदेश में

उल्लिखित निष्कर्षों में कोई अनुचितता, अवैधता या अनियमितता दर्शित नहीं की जा सकी है । (पैरा 6, 7, 8 और 9)

आरंभिक (सिविल) प्रकीर्ण रिट अधिकारिता : 2010 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 60565.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री बी. डी. मंध्यान और सतीश मंध्यान

प्रत्यर्थी की ओर से श्री डी. के. त्रिपाठी, मुख्य स्थायी काउंसेल

न्यायमूर्ति राकेश तिवारी – याची की ओर से वरिष्ठ काउंसेल श्री बी. डी. मंध्यान जिनकी सहायता श्री सतीश मंध्यान ने की, प्रत्यर्थी केविएकर्ता की ओर से श्री डी. के. त्रिपाठी को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया ।

2. मकान-मालिक-प्रत्यर्थी द्वारा 1992 का एस. सी. सी. वाद सं. 47 याची की बेदखली के लिए और 200/- रुपए प्रतिमास की दर से तीन वर्ष के किराए की वसूली के लिए लघुवाद, न्यायाधीश, मथुरा के न्यायालय में फाइल किया गया था । चूंकि याची किराएदार लगभग सात वर्ष तक न्यायालय में उपस्थित नहीं हुआ इसलिए विचारण न्यायालय ने एकपक्षीय कार्यवाही करने का निदेश करते हुए तारीख 21 जुलाई, 1999 को एकपक्षीय आदेश पारित किया । याची ने तारीख 21 जुलाई, 1999 को आदेश वापस लेने के लिए एक आवेदन (58-ग) फाइल किया जो तारीख 18 जनवरी, 2000 के आदेश द्वारा मंजूर किया गया और उसके पश्चात् वह पुनः अनुपस्थित हो गया । इन परिस्थितियों में वाद तारीख 19 मार्च, 2008 के निर्णय और आदेश द्वारा एकपक्षीय रूप से डिक्री कर दिया गया ।

3. याची ने तारीख 2 दिसम्बर, 2009 को परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अधीन आवेदन के साथ सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन एक आवेदन तारीख 19 मार्च, 2008 के आदेश को वापस लेने के लिए फाइल किया । विचारण न्यायालय ने यह पाया कि विलंब माफ करने के लिए दर्शाया गया कारण पर्याप्त नहीं था और तद्नुसार विलंब माफी आवेदन खारिज कर दिया गया । परिणामस्वरूप, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन भी

तारीख 25 फरवरी, 2010 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया । इस संबंध में आदेश का सुसंगत उद्धरण इस प्रकार है :–

> "परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 123 के अनुसार एकपक्षीय डिक्री को अपास्त कराने का प्रार्थना-पत्र डिक्री की तारीख से 30 दिन की समयावधि में प्रस्तुत किया जाएगा । इस प्रकार डिक्री की तिथि से एकपक्षीय आदेश निरस्त करने का प्रार्थना-पत्र 30 दिन में प्रस्तुत किया जाएगा । प्रार्थिनी ने एक पक्षीय डिक्री की जानकारी दिनांक 21.11.2009 को होना बताया है । इस प्रकार यह प्रार्थना-पत्र करीब एक वर्ष आठ महीने विलम्ब से प्रस्तुत किया जा रहा है । परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अनुसार कोई अपील या प्रार्थना-पत्र नियत समयावधि के पश्चात् भी स्वीकार किया जा सकता है । यदि अपीलाण्ट या प्रार्थी न्यायालय की यह समाधान कर देता है कि नियत समय में अपील या प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत नहीं करने का पर्याप्त कारण था । प्रश्नगत मामले में प्रार्थिनी ने वाद की पैरवी नहीं हो सकी और वाद एक पक्षीय रूप से निर्णीत हो गया । उक्त निर्णय की जानकारी समय से ही होने के कारण प्रार्थना-पत्र नियत समय में नहीं दिया जा सका । मूल वाद की पत्रावली के अवलोकन से यह साबित होता है कि दिनांक 25.1.2003 के बाद से प्रतिवादिनी लगातार अनुपस्थित रही है और दिनांक 19.11.2005 को प्रतिवादिनी की अनुपस्थिति के कारण जिरह का अवसर समाप्त किया गया है । प्रार्थिनी ने अपने पति की मृत्यु दिसम्बर, 2008 में होना बताया है । इस प्रकार प्रार्थिनी के इस तर्क में यह बल नहीं है कि प्रार्थिनी के पति की मृत्यु के कारण वाद की पैरवी नहीं हो सकी । प्रार्थिनी के द्वारा यह भी कथन किया गया है कि दिनांक 22.3.2004 को वाद अंतरित हुआ है उसकी भी कोई सूचना नहीं दी गई है । सामान्य नियमावली व्यवहार के नियम 89 के उपनियम 03 के अनुसार जब अधिक संख्या में वाद एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय में अंतरित किए जाते हैं तब उनकी सूचना पक्षकारों को दिया जाना आवश्यक नहीं है इस प्रकार भी प्रार्थिनी को सूचना दिए जाने का कोई औचित्य नहीं है । प्रार्थिनी के पुत्र भी हैं जो वाद की पैरवी कर सकते थे । परन्तु उनके द्वारा पैरवी नहीं की गई । इस प्रकार प्रार्थिनी का आचरण से ही प्रतीत होता है कि उसके द्वारा वाद की पैरवी में घोर उपेक्षा की गई है । प्रार्थिनी की लापरवाही व उपेक्षापूर्ण आचरण के कारण ही वाद की कार्यवाही

अनावश्यक रूप से विलम्बित होती रही है । जिस मकान में प्रार्थिनी निवास कर रही है उसके बारे में काफी समय तक मुकदमेबाजी इस न्यायालय में व अन्य न्यायालय में होती रही है इसके बाद भी प्रार्थिनी को वाद की जानकारी होना किसी दशा में विश्वास योग्य नहीं है । प्रार्थिनी ने अपने प्रार्थना-पत्र में कोई कथन अंकित नहीं किया है बल्कि आदेश 9, नियम 13 सी.पी.सी. के प्रार्थना-पत्र में वर्णित कथनों के आधार पर विलंब को क्षमा किए जाने की याचना की है । इसी के साथ ही साथ प्रार्थना-पत्र के समर्थन में कोई शपथपत्र भी प्रस्तुत नहीं किया है । प्रार्थना-पत्र में कोई कथन न होने के कारण प्रार्थना-पत्र पोषणीय नहीं है । मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में प्रार्थना-पत्र 4-ग स्वीकार होने योग्य नहीं है ।

आदेश

प्रार्थना-पत्र 4-ग धारा 5 परिसीमा अधिनियम खारिज किया जाता है ।

दिनांक 25.2.2010

ह. अ.

दिनांक 25.2.2010

अ. सि. जज (व. ख.) मथुरा

न्या. सं. 1,

निस्तारण प्रार्थना-पत्र 6-ग

आदेश 9, नियम 13 सिविल प्रक्रिया संहिता प्रार्थिनी ने लघुवाद संख्या 47/92 हनीफ बनाम शान्ति देवी में पारित निर्णय दिनांक 19.3.2008 के आधार पर पारित डिक्री को अपास्त करने हेतु प्रस्तुत किया है । यह प्रार्थना-पत्र नियत समयावधि के बाहर था जिसके संबंध में प्रार्थना-पत्र प्रार्थिनी ने प्रस्तुत किया था जो खारिज किया जा चुका है । इस प्रकार यह प्रार्थना-पत्र समयावधि से बाहर होने के कारण पोषणीय नहीं है । अतः प्रार्थना-पत्र स्वीकार होने योग्य नहीं है ।

आदेश

प्रार्थना-पत्र 6-ग आदेश 9, नियम 13 सि. प्र. रा. खारिज किया जाता है ।

दिनांक 25.2.2010 ह. अ.

25.2.2010

अ. सि. जज (व.ख.) मथुरा

न्या. सं.1 ''

4. याची ने उपर्युक्त आदेश से व्यथित होकर जिला न्यायाधीश, मथुरा के समक्ष तारीख 25 फरवरी, 2010 के आदेश के विरुद्ध 2010 का सिविल पुनरीक्षण सं. 10 फाइल किया । पुनरीक्षण न्यायालय ने याची को सुनने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि अभिलेख से यह प्रकट होता है कि याची तारीख 25 नवम्बर, 2003 से निरन्तर अनुपस्थित रही है और वह कार्यवाहियों में शामिल नहीं हुई थी, परिणामस्वरूप वाद तारीख 19 मार्च, 2008 को एकपक्षीय रूप से डिक्री कर दिया गया और विलंब माफी आवेदन के साथ आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन एक वर्ष और आठ मास के बाद फाइल किया गया था और वह भी अयुक्तियुक्त आधारों पर । विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, विचारण न्यायालय ने विलंब की माफी के लिए आवेदन और आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन को खारिज करने में कोई गलती नहीं की है तद्नुसार तारीख 13 अगस्त, 2010 के निर्णय और आदेश द्वारा पुनरीक्षण खर्चे के साथ खारिज कर दिया था ।

5. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि परिस्थितियों में विलंब को माफ किया जाना चाहिए और इसलिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आदेश वापस लेने के लिए आवेदन मंजूर किए जाने योग्य है ताकि मामले का गुण-दोष के आधार पर विनिश्चय किया जा सके । अन्य किसी प्रश्न पर दलील नहीं दी गई है ।

6. आदेश 9 के नियम 13 के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि जहां न्यायालय का प्रतिवादी के विरुद्ध एकपक्षीय डिक्री को अपास्त करने के लिए यह समाधान हो जाता है कि समनों की विधिवत् तामील नहीं हुई है और उसे किसी पर्याप्त कारण से रोका गया था वहां वाद को सुनने के लिए बुलाया जाएगा ।

7. यद्यपि आदेश 9, नियम 13 के अधीन मामले के प्रत्यावर्तन के लिए उदार दृष्टिकोण अपेक्षित है, तथापि, न्यायालय को कारण की पर्याप्तता के बारे में अपना समाधान करना चाहिए । वर्तमान मामले में

निचले न्यायालय ने यह पाया है कि आदेश को वापस लेने के लिए आवेदन में दिया गया स्पष्टीकरण यह है कि याची को तारीख 21 नवम्बर, 2009 को एकपक्षीय डिक्री के बारे में जानकारी प्राप्त हुई और उससे पूर्व दिसम्बर, 2008 में याची के पति की मृत्यु हो गई थी तथा उसके जीवन के दौरान पति बाबूलाल मामले की पैरवी कर रहा था और उसकी मृत्यु के पश्चात् मामले की पैरवी करने के लिए कोई नहीं था तथा तारीख 22 मार्च, 2004 को वाद एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया था । पक्षकारों पर साधारण (सिविल) नियमों के नियम 89-क के अधीन सूचना की तामील की जानी चाहिए थी किन्तु किसी सूचना की तामील नहीं की गई तथा मामला किसी नोटिस के बिना स्थानांतरित कर दिया गया था, किए गए प्रकथन अपर्याप्त थे और प्रकथन पर्याप्त नहीं थे ।

8. न्यायालय ने यह निश्चित निष्कर्ष निकाला कि आदेश लेने के लिए आवेदन अस्पष्ट कमियों से ग्रस्त था । कार्यवाहियों में उससे पहले ही एकपक्षीय कार्यवाही किए जाने का आदेश पारित किया चुका था जब मामला दूसरे न्यायालय में स्थानांतरित किया गया था । याची पर समन तामील किए गए थे और उसके काउंसेल ने मामले में पैरवी की थी । यह अविश्वसनीय है कि याची और काउंसेल ने पश्चात्वर्ती तारीख पर यह जानने का प्रयत्न नहीं किया कि क्या आदेश पारित किए गए हैं जब एकपक्षीय कार्यवाहियां की गई हैं वह भी तारीख 25 नवम्बर, 2003 से इतने वर्षों तक ।

9. निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित आक्षेपित आदेश में उल्लिखित निष्कर्षों में कोई अनुचितता, अवैधता या अनियमितता दर्शित नहीं की जा सकी है ।

10. रिट याचिका में कोई बल नहीं है और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है । खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मही./मह.

संतोष कुमार

बनाम

अपर जिला मजिस्ट्रेट वित्त एवं राजस्व, बिजनौर और अन्य

तारीख 8 अप्रैल, 2011

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल

रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का 16) – धारा 33, 40 और 47-क – दस्तावेज का रजिस्ट्रीकरण – सम्पत्ति का बाजार मूल्य – स्टाम्प शुल्क – रजिस्ट्रीकरण प्राधिकारियों द्वारा संपत्ति मुख्य मार्ग पर होने के आधार पर अधिक स्टाम्प की मांग – सम्पत्ति के बाजार मूल्य के निर्धारण में अन्य कारकों पर विचार न किया जाना – मात्र संपत्ति के स्थान के आधार पर बाजार मूल्य का निर्धारण करना उचित नहीं है – बाजार मूल्य के निर्धारण में अन्य कारकों यथा संपत्ति की अवस्था, किराएदारों का कब्जा आदि पर भी विचार किया जाना चाहिए ।

यह रिट याचिका उप-खंड अधिकारी, नगीना द्वारा तारीख 22 जुलाई, 1994 को पारित आदेश (रिट याचिका का उपाबंध 14) और मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकरण, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद द्वारा तारीख 3 जुलाई, 1996 को पारित आदेश (रिट याचिका का उपाबंध 15) के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा याची की सम्पत्ति का मूल्यांकन आठ लाख रुपए निर्धारित किया गया है और इस आधार पर रु. 29,877.50 पैसे के स्टाम्प शुल्क की कमी अवधारित की गई है । रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभिलेख से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्यर्थी ने सम्पत्ति का बाजार मूल्य निर्धारित करने के लिए केवल इस एक तथ्य का अवलंब लिया कि भवन रेलवे स्टेशन, बस अड्डा, प्रधान डाकघर, अस्पताल और माध्यमिक महाविद्यालय के निकट मुख्य मार्ग पर स्थित है और इसलिए इसका बाजार मूल्य आठ लाख रुपए से कम निर्धारित नहीं किया जा सकता, किन्तु, निर्धारण प्राधिकारी ने इस निष्कर्ष पर विचार नहीं किया और ऐसा कोई तथ्य निर्दिष्ट नहीं किया जिसके आधार पर उक्त मूल्य निर्धारित किया गया है । सम्पत्ति का बाजार मूल्य विभिन्न कारकों पर आधारित होता है । ऐसे कारकों की सूची का निःशेष रूप से उल्लेख करना कठिन होगा तथापि,

वास्तविक तथ्य यह है कि मात्र सम्पत्ति का स्थान ऐसा परिणाम नहीं दे सकता क्योंकि कोई सम्पत्ति कम महत्वपूर्ण स्थान पर हो सकती है । उदाहरण के रूप में यदि सम्पत्ति किराएदार के अधिभोग में है या ऐसे किसी व्यक्ति के नियंत्रण में है जो आपराधिक पृष्ठभूमि रखता है तो ऐसी स्थिति में सम्पत्ति नगर में बेहतर स्थान पर होने पर भी उसका अधिक बाजार मूल्य नहीं हो सकता क्योंकि ऐसी सम्पत्ति को कोई भी क्रय करने के लिए तैयार नहीं होगा । बाजार मूल्य प्रत्यक्षतः ऐसी कीमत पर स्वतंत्र और स्वैच्छिक क्रेता की उपलब्धता से संबंधित है । कागज पर किसी कीमत का उसके बाजार मूल्य से अर्थ नहीं हो सकता भले ही इसको लेखा पुस्तक में कीमती दिखाया गया हो । संबंधित प्राधिकारी ने पूर्ण रूप से विधि की गलती की है और तथ्यतः उसने दोनों ही तरह से अर्थात् भवन के स्थान को निर्दिष्ट करके और अन्य किसी तथ्य पर विचार न करके जो उसकी कीमत को बढ़ा या घटा सकता है । ऐसा प्रतीत होता है कि प्राधिकारियों ने इस उद्देश्य के आधार पर कार्यवाही की है कि उच्च कीमत नियत करना उनकी कानूनी बाध्यता है क्योंकि वे इस तथ्य को विचार में नहीं ले सकते कि क्या वे स्वयं ऐसी भूमि या विवादित सम्पत्ति को क्रय करने के लिए तैयार नहीं हो सकते । बाजार मूल्य के निर्धारण के मामले में पुनरीक्षण प्राधिकारियों का निष्कर्ष विवेक का प्रयोग न करना और असंगत बातों से प्रभावित होना दर्शाता है । सामान्यतः प्राधिकारी ऐसे पहलू पर विचार करने से बचते हैं जो कीमत को कम करने वाला हो क्योंकि जहां तक संभव हो, स्टाम्प शुल्क की मांग करने का इस प्रकार प्रयास किया जाता है मानो यही एकमात्र विधि की अपेक्षा है और उनसे इस प्रकार की प्रत्याशा की जाती है । ऐसा नहीं है । प्राधिकारी को इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि रजिस्ट्रीकरण का प्रयोजन और स्टाम्प शुल्क का प्रयोजन सामान्य जनता को उनके द्वारा कठिनाई से अर्जित किए गए धन को लूटना नहीं है । राज्य एक डकैत की या छीन-झपट करने वाले की भांति कार्यवाही नहीं कर सकता । उनसे इस उद्देश्य की अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वे स्थावर सम्पत्ति के संव्यवहार को हतोत्साहित करें या ऐसे संव्यवहार के लिए कानूनी प्रभार मांग कर सम्पत्ति को जब्त करें । न्यायालय वस्तुतः उस निष्कर्ष और उस रीति का पता लगाने में असमर्थ है जिसमें इस मामले में प्राधिकारियों ने सम्पत्ति का बाजार मूल्य अवधारित करने के लिए कार्यवाही की है विशेषतया तब जब याची उनकी जानकारी में यह बात लाया था कि

भवन जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है और उससे किराए के रूप में बहुत कम धनराशि अर्थात् 7,296/- रुपए उपार्जित होते हैं और सम्पत्ति विभिन्न किराएदारों के कब्जे और अधिभोग में है और ऐसा व्यक्ति जो इसे क्रय करेगा, वर्तमान किराएदारों से मुकदमेदारी भी क्रय करेगा । पुनरीक्षण प्राधिकारी ने भी यही गलती की है । उसने अपने समक्ष याची द्वारा किराएदारों द्वारा विवादित सम्पत्ति पर कब्जा होने के बारे में और भवन जीर्ण-शीर्ण अवस्था में होने के बारे में दी गई दलीलों का निर्देश किया है किन्तु उसने प्रश्नगत सम्पत्ति के बाजार मूल्य पर इसके प्रभाव पर विचार नहीं किया है और उपरोक्त सम्पत्ति का मूल्य कम करने वाले कारक की उपेक्षा करते हुए मात्र अटकलों और परिकल्पनाओं के आधार पर कार्यवाही की है । यह दलील दी गई है कि याची ने तारीख 16 नवम्बर, 1987 के आक्षेप में प्रश्नगत भवन की अवस्था के बारे में कुछ नहीं कहा है तथापि, उप-खंड अधिकारी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में इस दलील की उपेक्षा की गई है जिसमें उसने स्वयं याची की इस शिकायत का निर्देश किया है कि भवन अत्यन्त खराब अवस्था में है जैसा कि तारीख 22 जुलाई, 1994 के आदेश के प्रथम पैरा (पेपर बुक का पृष्ठ 63) से स्पष्ट होता है जिसमें उसने यह कहा है कि 'कोठी को खस्ता हालत में दिखलाया गया है ।' इससे यह उपदर्शित होता है कि पुनरीक्षण प्राधिकारी ने भी उस दस्तावेज और तथ्यों का गलत परिशीलन किया है जिनका उप-खंड अधिकारी के आदेश में उल्लेख है । इसकी यह कहते हुए उपेक्षा की गई है कि याचियों ने इस तथ्य का तारीख 16 नवम्बर, 1987 के उत्तर में उल्लेख नहीं किया है और इसलिए याची के पश्चात्वर्ती आक्षेप में उपेक्षा की गई है जिसमें इस तथ्य का विनिर्दिष्ट रूप से उल्लेख किया गया है और उप-खंड अधिकारी के 22 जुलाई, 1994 के आदेश में भी उल्लेख है । परिणामतः, रिट याचिका मंजूर की जाती है । (पैरा 5, 7, 8, 9, 10, 11 और 12)

आरम्भिक (सिविल) प्रकीर्ण रिट अधिकारिता : 1996 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 32178.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री के. एम. गर्ग

प्रत्यर्थियों की ओर से मुख्य स्थायी काउंसेल

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – याची के विद्वान् काउंसेल श्री के. एम. गर्ग और राज्य-प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान् स्थायी काउंसेल को सुना ।

2. यह रिट याचिका उप-खंड अधिकारी, नगीना द्वारा तारीख 22 जुलाई, 1994 को पारित आदेश (रिट याचिका का उपाबंध 14) और मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकरण, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद द्वारा तारीख 3 जुलाई, 1996 को पारित आदेश (रिट याचिका का उपाबंध 15) के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा याची की सम्पत्ति का मूल्यांकन आठ लाख रुपए निर्धारित किया गया है और इस आधार पर रु. 29,877.50 पैसे के स्टाम्प शुल्क की कमी अवधारित की गई है ।

3. यह कहा गया है कि याची ने तारीख 31 दिसम्बर, 1987 के विक्रय-विलेख द्वारा 1,777 वर्ग मीटर क्षेत्र में स्थित भवन क्रय किया था और स्टाम्प नियमों के नियम 340 के अधीन निर्धारित बाजार मूल्य के अनुसार स्टाम्प शुल्क संदत्त किया था । सम्पत्ति का बाजार मूल्य 4,48,500/- रुपए निर्धारित किया गया था जिसके ऊपर स्टाम्प शुल्क संदत्त किया गया था । तथापि, रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 47-क के अधीन दस्तावेज सही बाजार मूल्य के निर्धारण के लिए कलक्टर को भेजा गया था । रजिस्ट्रीकरण के पश्चात् उप-रजिस्ट्रार ने यह उल्लेख किया कि याची ने सही बाजार मूल्य पर स्टाम्प शुल्क संदत्त नहीं किया है ।

4. ऐसा प्रतीत होता है कि श्री ए. के. शर्मा नामक व्यक्ति की शिकायत के आधार पर याची को तारीख 26 अक्तूबर, 1998 को एक कारण बताओ सूचना जारी की गई थी । उप-खंड अधिकारी ने तहसीलदार की तारीख 11 सितम्बर, 1987 की रिपोर्ट का निर्देश किया जिसमें उसने सम्पत्ति का बाजार मूल्य 8,92,000/- रुपए निर्धारित किया था । उप-खंड अधिकारी ने अपनी रिपोर्ट अपर जिला मजिस्ट्रेट (वित्त और राजस्व), बिजनौर को प्रस्तुत की जिसपर स्टाम्प अधिनियम की धारा 47-क/33/40 (ख) के अधीन कार्यवाहियां आरम्भ की गई थीं और तारीख 21 नवम्बर, 1988 की सूचना जारी की गई थी । याची ने तारीख 8 मई, 1989 के आक्षेप द्वारा इसका विरोध किया । उप-खंड अधिकारी ने रु. 29,877.50 पैसे के स्टाम्प शुल्क की कमी अवधारित करते हुए तारीख 22 जुलाई, 1998 का आदेश पारित किया । पुनरीक्षण प्राधिकारी ने तारीख 3 जुलाई, 1996 के आदेश द्वारा इस आदेश की पुष्टि की थी ।

5. अभिलेख से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्यर्थी ने सम्पत्ति का बाजार मूल्य निर्धारित करने के लिए केवल इस एक तथ्य का अवलंब लिया कि भवन रेलवे स्टेशन, बस अड्डा, प्रधान डाकघर, अस्पताल और माध्यमिक महाविद्यालय के निकट मुख्य मार्ग पर स्थित है और इसलिए इसका बाजार मूल्य आठ लाख रुपए से कम निर्धारित नहीं किया जा सकता, किन्तु, निर्धारण प्राधिकारी ने इस निष्कर्ष पर विचार नहीं किया और ऐसा कोई तथ्य निर्दिष्ट नहीं किया जिसके आधार पर उक्त मूल्य निर्धारित किया गया है ।

6. इसके प्रतिकूल याची ने यह दलील दी कि भवन में 5 किराएदार हैं जिनके विरुद्ध बेदखली कार्यवाहियां इस आधार पर आरम्भ की गई हैं कि भवन जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है और सक्षम प्राधिकारी ने इस अभिवचन को स्वीकार करते हुए आदेश पारित किए हैं किन्तु किराएदारों की बेदखली नहीं हो सकी है । इसके अतिरिक्त जब एक बार सम्पत्ति का मूल्य निर्धारित कर लिया गया हो और स्टाम्प नियमों के नियम 340 के अधीन विहित दर पर स्टाम्प दिया गया हो तो मात्र स्थान के आधार पर अपील प्राधिकारी ने यह मत व्यक्त करके विधितः गलती की है कि सम्पति आठ लाख रुपए से कम की नहीं है । तथ्यतः कलक्टर द्वारा अन्य किसी पहलू पर विचार नहीं किया गया है जैसा कि रिट याचिका के पृष्ठ सं. 67 से स्पष्ट है ।

7. सम्पत्ति का बाजार मूल्य विभिन्न कारकों पर आधारित होता है । ऐसे कारकों की सूची का निःशेष रूप से उल्लेख करना कठिन होगा तथापि, वास्तविक तथ्य यह है कि मात्र सम्पत्ति का स्थान ऐसा परिणाम नहीं दे सकता क्योंकि कोई सम्पत्ति कम महत्वपूर्ण स्थान पर हो सकती है । उदाहरण के रूप में यदि सम्पत्ति किराएदार के अधिभोग में है या ऐसे किसी व्यक्ति के नियंत्रण में है जो आपराधिक पृष्ठभूमि रखता है तो ऐसी स्थिति में सम्पत्ति नगर में बेहतर स्थान पर होने पर भी उसका अधिक बाजार मूल्य नहीं हो सकता क्योंकि ऐसी सम्पत्ति को कोई भी क्रय करने के लिए तैयार नहीं होगा । बाजार मूल्य प्रत्यक्षतः ऐसी कीमत पर स्वतंत्र और स्वैच्छिक क्रेता की उपलब्धता से संबंधित है । कागज पर किसी कीमत का उसके बाजार मूल्य से अर्थ नहीं हो सकता भले ही इसको लेखा पुस्तक में कीमती दिखाया गया हो ।

8. संबंधित प्राधिकारी ने पूर्ण रूप से विधि की गलती की है और तथ्यतः उसने दोनों ही तरह से अर्थात् भवन के स्थान को निर्दिष्ट करके

और अन्य किसी तथ्य पर विचार न करके जो उसकी कीमत को बढ़ा या घटा सकता है ।

9. ऐसा प्रतीत होता है कि प्राधिकारियों ने इस उद्देश्य के आधार पर कार्यवाही की है कि उच्च कीमत नियत करना उनकी कानूनी बाध्यता है क्योंकि वे इस तथ्य को विचार में नहीं ले सकते कि क्या वे स्वयं ऐसी भूमि या विवादित सम्पत्ति को क्रय करने के लिए तैयार नहीं हो सकते । बाजार मूल्य के निर्धारण के मामले में पुनरीक्षण प्राधिकारियों का निष्कर्ष विवेक का प्रयोग न करना और असंगत बातों से प्रभावित होना दर्शाता है । सामान्यतः प्राधिकारी ऐसे पहलू पर विचार करने से बचते हैं जो कीमत को कम करने वाला हो क्योंकि जहां तक संभव हो, स्टाम्प शुल्क की मांग करने का इस प्रकार प्रयास किया जाता है मानो यही एकमात्र विधि की अपेक्षा है और उनसे इस प्रकार की प्रत्याशा की जाती है । ऐसा नहीं है । प्राधिकारी को इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि रजिस्ट्रीकरण का प्रयोजन और स्टाम्प शुल्क का प्रयोजन सामान्य जनता को उनके द्वारा कठिनाई से अर्जित किए गए धन को लूटना नहीं है । राज्य एक डकैत की या छीन-झपट करने वाले की भांति कार्यवाही नहीं कर सकता । उनसे इस उद्देश्य की अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वे स्थावर सम्पत्ति के संव्यवहार को हतोत्साहित करें या ऐसे संव्यवहार के लिए कानूनी प्रभार मांग कर सम्पत्ति को जब्त करें ।

10. न्यायालय वस्तुतः उस निष्कर्ष और उस रीति का पता लगाने में असमर्थ है जिसमें इस मामले में प्राधिकारियों ने सम्पत्ति का बाजार मूल्य अवधारित करने के लिए कार्यवाही की है विशेषतया तब जब याची उनकी जानकारी में यह बात लाया था कि भवन जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है और उससे किराए के रूप में बहुत कम धनराशि अर्थात् 7,296/- रुपए उपार्जित होते हैं और सम्पत्ति विभिन्न किराएदारों के कब्जे और अधिभोग में है और ऐसा व्यक्ति जो इसे क्रय करेगा, वर्तमान किराएदारों से मुकदमेदारी भी क्रय करेगा । पुनरीक्षण प्राधिकारी ने भी यही गलती की है । उसने अपने समक्ष याची द्वारा किराएदारों द्वारा विवादित सम्पत्ति पर कब्जा होने के बारे में और भवन जीर्ण-शीर्ण अवस्था में होने के बारे में दी गई दलीलों का निर्देश किया है किन्तु उसने प्रश्नगत सम्पत्ति के बाजार मूल्य पर इसके प्रभाव पर विचार नहीं किया है और उपरोक्त सम्पत्ति का मूल्य कम करने वाले कारक की उपेक्षा करते हुए मात्र अटकलों और परिकल्पनाओं के आधार पर

कार्यवाही की है ।

11. यह दलील दी गई है कि याची ने तारीख 16 नवम्बर, 1987 के आक्षेप में प्रश्नगत भवन की अवस्था के बारे में कुछ नहीं कहा है तथापि, उप-खंड अधिकारी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में इस दलील की उपेक्षा की गई है जिसमें उसने स्वयं याची की इस शिकायत का निर्देश किया है कि भवन अत्यन्त खराब अवस्था में है जैसा कि तारीख 22 जुलाई, 1994 के आदेश के प्रथम पैरा (पेपर बुक का पृष्ठ 63) से स्पष्ट होता है जिसमें उसने यह कहा है कि 'कोठी को खस्ता हालत में दिखलाया गया है ।' इससे यह उपदर्शित होता है कि पुनरीक्षण प्राधिकारी ने भी उस दस्तावेज और तथ्यों का गलत परिशीलन किया है जिनका उप-खंड अधिकारी के आदेश में उल्लेख है । इसकी यह कहते हुए उपेक्षा की गई है कि याचियों ने इस तथ्य का तारीख 16 नवम्बर, 1987 के उत्तर में उल्लेख नहीं किया है और इसलिए याची के पश्चात्वर्ती आक्षेप में उपेक्षा की गई है जिसमें इस तथ्य का विनिर्दिष्ट रूप से उल्लेख किया गया है और उप-खंड अधिकारी के 22 जुलाई, 1994 के आदेश में भी उल्लेख है ।

12. परिणामतः, रिट याचिका मंजूर की जाती है । उप-खंड अधिकारी, नगीना, बिजनौर द्वारा पारित तारीख 22 जुलाई, 1994 का आक्षेपित आदेश (याचिका का उपाबंध 14) और मुख्य नियंत्रक, राजस्व प्राधिकरण, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद द्वारा तारीख 3 जुलाई, 1996 को पारित आक्षेपित आदेश (रिट याचिका का उपाबंध 15) अपास्त किए जाते हैं । याची खर्चों के लिए हकदार है जिसे मैं 20,000/- रुपए (केवल बीस हजार) के रूप में संगणित करता हूं । तथापि, यह आदेश प्रत्यर्थियों को विधि के अनुसार नए सिरे से कार्यवाही करने से विवर्जित नहीं करेगा ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

मह.

उत्तर प्रदेश राज्य

बनाम

रघुराज सिंह और अन्य

तारीख 4 जुलाई, 2011

न्यायमूर्ति सिबग़त उल्ला ख़ां

भू-जोतों पर अधिकतम सीमा अधिरोपण अधिनियम, 1960 – धारा 13-क – अधिकतम सीमा – निर्धारण – आदेश में गलती से असिंचित भूमि को सिंचित माना जाना – धारा 13-क के अधीन केवल गणितीय या लिपिकीय त्रुटि को ही सुधारा जा सकता है – चूंकि धारा पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदत्त नहीं करती इसलिए अपील न्यायालय भूमि के सिंचित या असिंचित होने की प्रकृति के बारे में पुनः विचार नहीं कर सकता ।

प्रत्यर्थी सं. 1 के विरुद्ध उत्तर प्रदेश भू-जोतों पर अधिकतम सीमा अधिरोपण अधिनियम, 1960 के अधीन अधिशेष भूमि के निर्धारण के लिए कार्यवाहियां आरम्भ की गई थीं । आरम्भतः विहित प्राधिकारी ने यह अभिनिर्धारित किया कि सिंचित भूमि के निबंधनों में मूल प्रत्यर्थी सं. 1 के पास 44.66 एकड़ भूमि अधिशेष है जैसा कि सूचना में उल्लेख किया गया है । उपर्युक्त आदेश के विरुद्ध अपील फाइल की गई थी जिसे जिला न्यायाधीश ने दो अन्य अपीलों के साथ तारीख 2 मार्च, 1978 के एक ही निर्णय द्वारा विनिश्चित किया था । अंतिम रूप से कुछ मुद्दों को विनिश्चित करने के पश्चात् अधिशेष क्षेत्र के पुनः निर्धारण के लिए मामला विहित प्राधिकारी को प्रतिप्रेषित किया गया था । इस न्यायालय द्वारा अपील न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की गई थी । इसके पश्चात् मूल प्रत्यर्थी सं. 1 ने अधिकतम सीमा अधिनियम की धारा 13-क के अधीन विहित प्राधिकारी के समक्ष एक आवेदन फाइल किया था । याची-राज्य के अनुसार उक्त आवेदन में लिए गए कुछ बिन्दु पहले ही अपील न्यायालय द्वारा तारीख 2 मार्च, 1978 को पारित प्रतिप्रेषण आदेश द्वारा विनिश्चित कर दिए गए थे । अंततः विहित प्राधिकारी ने तारीख 23 मई, 1985 के आदेश द्वारा मामले को विनिश्चित किया जिसमें विहित प्राधिकारी ने मूल प्रत्यर्थी सं. 1 के पास सिंचित भूमि के निबंधनों में 2.78 एकड़ भूमि अधिशेष घोषित की । मूल प्रत्यर्थी सं. 1 ने उक्त आदेश के विरुद्ध 1985-86 की अपील

सं. 62/247/46 के रूप में पुनः अपील फाइल की । अपर आयुक्त, झांसी खंड, झांसी ने पुनः अपील मंजूर करते हुए मामला तारीख 11 जुलाई, 1986 के निर्णय और आदेश द्वारा विहित प्राधिकारी को कतिपय निदेश देते हुए मामला प्रतिप्रेषित किया जिसे इस रिट याचिका द्वारा आक्षेपित किया गया है । रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – विहित प्राधिकारी/उप-खंड अधिकारी, कोंच, जिला जालौन ने मामला सं. 462 में तारीख 23 मई, 1985 को पारित आदेश द्वारा याची को चकबन्दी कार्यवाहियों के दौरान क्षेत्र में कटौती का फायदा प्रदान किया तथापि, सिंचित/असिंचित भू-खंडों की प्रकृति के संबंध में मुद्दों पर विहित प्राधिकारी द्वारा विचार करने से इनकार कर दिया गया क्योंकि इन्हें इस संबंध में अपील न्यायालय के तारीख 2 मार्च, 1978 के पूर्वतर निर्णय द्वारा अंतिम रूप से निपटा दिया गया था । अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यदि पूर्वतर आदेशों में कुछ भूमि गलत रूप से सिंचित मान ली गई थी जबकि वह वस्तुतः असिंचित थी, तब त्रुटि को अधिनियम की धारा 13-क के अधीन सुधारा जा सकता है । अधिकतम भू-सीमा अधिनियम की धारा 13-क केवल गणितीय और लिपिकीय सुधार के संबंध में उपबंध करती है । यह धारा पुनर्विलोकन की कोई शक्ति प्रदत्त नहीं करती । सामान्यतया अधिकतम भू-सीमा कार्यवाहियों में यह प्रश्न कि क्या कोई विशिष्ट भूखंड सिंचित है या असिंचित, विरोध/प्रतिवाद की विषय-वस्तु होता है । वर्तमान मामले में भी यही स्थिति है । अपील न्यायालय द्वारा मामले को अपने तारीख 2 मार्च, 1978 के पूर्वतर आदेश द्वारा विनिश्चित कर दिया गया था जिसकी इस न्यायालय ने 1978 की रिट याचिका सं. 4721 को खारिज करके आदेश की पुष्टि कर दी थी । अतः विहित प्राधिकारी या अपील न्यायालय के लिए यह संभव या अनुज्ञेय नहीं था कि वह भूमि सिंचित होने या असिंचित होने की प्रकृति के प्रश्न के बारे में पुनः विचार करे । अतः आक्षेपित आदेश विधि में पूर्णतया त्रुटिपूर्ण है । अपील न्यायालय के समक्ष अन्य कोई दलील नहीं दी गई थी । तद्नुसार, मामला अपील न्यायालय को प्रतिप्रेषित करने की कोई आवश्यकता नहीं है । रिट याचिका मंजूर की जाती है । (पैरा 4, 5 और 6)

आरम्भिक (सिविल) प्रकीर्ण रिट अधिकारिता : 1986 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 19399.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट

याचिका ।

याची की ओर से स्थायी काउंसेल

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री बी. के. सहाय

न्यायमूर्ति सिबग़त उल्ला ख़ां – याची-राज्य की ओर से विद्वान् स्थायी काउंसेल को सुना । पर्याप्त तामील के बावजूद प्रत्यर्थी सं. 1 के विधिक प्रतिनिधियों की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ ।

2. प्रत्यर्थी सं. 1 के विरुद्ध उत्तर प्रदेश भू-जोतों पर अधिकतम सीमा अधिरोपण अधिनियम, 1960 के अधीन अधिशेष भूमि के निर्धारण के लिए कार्यवाहियां आरम्भ की गई थीं । आरम्भतः विहित प्राधिकारी ने यह अभिनिर्धारित किया कि सिंचित भूमि के निबंधनों में मूल प्रत्यर्थी सं. 1 के पास 44.66 एकड़ भूमि अधिशेष है जैसा कि सूचना में उल्लेख किया गया है । उपर्युक्त आदेश के विरुद्ध अपील फाइल की गई थी जिसे जिला न्यायाधीश ने दो अन्य अपीलों के साथ तारीख 2 मार्च, 1978 के एक ही निर्णय द्वारा विनिश्चित किया था । अंतिम रूप से कुछ मुद्दों को विनिश्चित करने के पश्चात् अधिशेष क्षेत्र के पुनः निर्धारण के लिए मामला विहित प्राधिकारी को प्रतिप्रेषित किया गया था । इस न्यायालय द्वारा अपील न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की गई थी ।

3. इसके पश्चात् मूल प्रत्यर्थी सं. 1 ने अधिकतम सीमा अधिनियम की धारा 13-क के अधीन विहित प्राधिकारी के समक्ष एक आवेदन फाइल किया था । याची-राज्य के अनुसार उक्त आवेदन में लिए गए कुछ बिन्दु पहले ही अपील न्यायालय द्वारा तारीख 2 मार्च, 1978 को पारित प्रतिप्रेषण आदेश द्वारा विनिश्चित कर दिए गए थे । अंततः विहित प्राधिकारी ने तारीख 23 मई, 1985 के आदेश द्वारा मामले को विनिश्चित किया जिसमें विहित प्राधिकारी ने मूल प्रत्यर्थी सं. 1 के पास सिंचित भूमि के निबंधनों में 2.78 एकड़ भूमि अधिशेष घोषित की । मूल प्रत्यर्थी सं. 1 ने उक्त आदेश के विरुद्ध 1985-86 की अपील सं. 62/247/46 के रूप में पुनः अपील फाइल की । अपर आयुक्त, झांसी खंड, झांसी ने पुनः अपील मंजूर करते हुए मामला तारीख 11 जुलाई, 1986 के निर्णय और आदेश द्वारा विहित प्राधिकारी को कतिपय निदेश देते हुए मामला प्रतिप्रेषित किया जिसे इस रिट याचिका द्वारा आक्षेपित किया गया है ।

4. विहित प्राधिकारी/उप-खंड अधिकारी, कोंच, जिला जालौन ने

मामला सं. 462 में तारीख 23 मई, 1985 को पारित आदेश द्वारा याची को चकबन्दी कार्यवाहियों के दौरान क्षेत्र में कटौती का फायदा प्रदान किया तथापि, सिंचित/असिंचित भू-खंडों की प्रकृति के संबंध में मुद्दों पर विहित प्राधिकारी द्वारा विचार करने से इनकार कर दिया गया क्योंकि इन्हें इस संबंध में अपील न्यायालय के तारीख 2 मार्च, 1978 के पूर्वतर निर्णय द्वारा अंतिम रूप से निपटा दिया गया था ।

5. अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यदि पूर्वतर आदेशों में कुछ भूमि गलत रूप से सिंचित मान ली गई थी जबकि वह वस्तुतः असिंचित थी, तब त्रुटि को अधिनियम की धारा 13-क के अधीन सुधारा जा सकता है । अधिकतम भू-सीमा अधिनियम की धारा 13-क केवल गणितीय और लिपिकीय सुधार के संबंध में उपबंध करती है । यह धारा पुनर्विलोकन की कोई शक्ति प्रदत्त नहीं करती । सामान्यतया अधिकतम भू-सीमा कार्यवाहियों में यह प्रश्न कि क्या कोई विशिष्ट भू-खंड सिंचित है या असिंचित, विरोध/प्रतिवाद की विषय-वस्तु होता है । वर्तमान मामले में भी यही स्थिति है । अपील न्यायालय द्वारा मामले को अपने तारीख 2 मार्च, 1978 के पूर्वतर आदेश द्वारा विनिश्चित कर दिया गया था जिसकी इस न्यायालय ने 1978 की रिट याचिका सं. 4721 को खारिज करके आदेश की पुष्टि कर दी थी । अतः विहित प्राधिकारी या अपील न्यायालय के लिए यह संभव या अनुज्ञेय नहीं था कि वह भूमि सिंचित होने या असिंचित होने की प्रकृति के प्रश्न के बारे में पुनः विचार करे ।

6. अतः आक्षेपित आदेश विधि में पूर्णतया त्रुटिपूर्ण है । अपील न्यायालय के समक्ष अन्य कोई दलील नहीं दी गई थी । तद्नुसार, मामला अपील न्यायालय को प्रतिप्रेषित करने की कोई आवश्यकता नहीं है । रिट याचिका मंजूर की जाती है । निचले अपील न्यायालय द्वारा तारीख 11 जुलाई, 1986 को पारित निर्णय और आदेश अपास्त किया जाता है । अपील खारिज की जाती है । विहित प्राधिकारी द्वारा तारीख 23 मई, 1985 को पारित निर्णय और आदेश का अनुमोदन करते हुए इसे पुनःस्थापित किया जाता है ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

मह.

राजेन्द्र प्रसाद शर्मा

बनाम

(श्रीमती) प्रतिभा रानी शर्मा

तारीख 4 जुलाई, 2011

न्यायमूर्ति राकेश तिवारी

उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किराए पर देने, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 (1972 का 13) – धारा 16(1)क, 16(2) और 21(1)(क) – किराएदारी – मकान-मालिक की वास्तविक और सद्भाविक आवश्यकता के आधार पर निर्मुक्ति के लिए आवेदन – 6 मास की पूर्व सूचना न देने संबंधी आक्षेप – जहां किराएदार को भवन खाली करने के लिए युक्तियुक्त अवसर प्राप्त हो गए हों वहां मात्र इस आधार पर कि मकान-मालिक ने 6 मास की पूर्व सूचना नहीं दी थी, किराएदार को उपबंध का फायदा नहीं दिया जा सकता ।

याची ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन यह रिट याचिका 2010 की अपील सं. 19 में अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय सं. 14, मुरादाबाद द्वारा तथा विहित प्राधिकारी द्वारा क्रमशः तारीख 31 मई, 2011 और तारीख 6 सितम्बर, 2010 को पारित निर्णय और आदेशों की विधिमान्यता और औचित्यता को आक्षेपित करते हुए फाइल की है जिनके द्वारा प्रत्यर्थी-मकान मालकिन को उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किराए पर देने, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 (जिसे आगे संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 21(1)(क) के अधीन फाइल आवेदन को मंजूर किया गया है । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – याची चाहे वह अनुज्ञप्तिधारक हो या किराएदार, उसे अधिनियम के उपबंध लागू होते हैं । यदि अनुज्ञप्तिधारक किसी भवन को या उसके किसी भाग को अनुज्ञप्ति के अधीन लेता है और अधिनियम में विनिर्दिष्ट अवधि के पश्चात् इसे खाली नहीं करता है तो उसके विरुद्ध 1972 के अधिनियम सं. 13 के अधीन विधि के अनुसार कार्यवाहियां की जा सकती हैं जैसा कि अधिनियम की धारा 2-क के उपखंड (5) के अधीन उपबंधित है । यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि याची-किराएदार ने

स्वयं 1987 का मूल वाद सं. 857 सिविल न्यायालय में यह कहते हुए फाइल किया था कि उसे विधि के अनुसरण के सिवाय बेदखल न किया जाए और मकान-मालकिन द्वारा अधिनियम की धारा 21(1)(क) के अधीन निर्मुक्ति आवेदन के अधीन बेदखल न किया जाए क्योंकि वह दुकान को खाली नहीं करना चाहता । याची के काउंसेल द्वारा सूचना की अवधि के संबंध में दलील स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है क्योंकि यह सुस्थापित विधि है कि सूचना पूर्व में दी जा सकती है किन्तु युक्तियुक्त अवसर दिया गया है और पश्चात्वर्ती मकान-मालकिन द्वारा क्रय करने के 6 मास की अवधि के भीतर उसे बेदखल नहीं किया जा सका । उपबंधित 6 मास की अवधि किराएदार को वैकल्पिक आवास की व्यवस्था करने के लिए युक्तियुक्त अवसर देना है । वर्तमान मामले में निचले न्यायालयों ने तथ्य का यह स्पष्ट निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि किराएदार ने 1997 में सूचना की प्राप्ति के पश्चात् भी युक्तियुक्त अवधि के भीतर दुकान खाली नहीं की यद्यपि मुकदमेबाजी में 7 वर्ष की अवधि बीत चुकी है । निचले न्यायालयों ने यह ठीक ही निष्कर्ष निकाला है कि विज्ञापन की फोटोप्रति का तब तक अवलंब नहीं लिया जा सकता जब तक कि इसे विधि के अनुसार साबित न कर दिया जाए और उसके पश्चात् भी यह द्वितीयक साक्ष्य का एक भाग हो सकता है । निचले न्यायालयों ने याची के इस पक्षकथन को ठीक ही त्यक्त किया है कि उसने वैकल्पिक व्यवस्था को तलाश करने के लिए सम्यक् प्रयास किए हैं । मकान-मालकिन को अपने पुत्र को स्वतंत्र रूप से कारबार कराने का अधिकार है । निचले न्यायालयों ने मामले के सभी पहलुओं पर विचार किया है, विशेषतया अधिनियम की धारा 16 के उपबंध और नियमों पर जिनकी आक्षेपित आदेश में चर्चा की गई है और यह अभिनिर्धारित किया गया है कि मकान-मालकिन की अपने पुत्र को कारबार कराने के लिए विवादित दुकान की आवश्यकता वास्तविक और सद्भाविक है और वह किराएदार के मुकाबले तुलनात्मक रुप से अधिक कठिनाई उठा रही है क्योंकि किराएदार के पुत्र पहले से ही अपना कारबार कर रहे हैं । निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित तथ्य के एक जैसे निष्कर्षों और उपर्युक्त कारणों को दृष्टिगत करते हुए आक्षेपित निर्णय और आदेश पुष्ट किए जाने योग्य हैं क्योंकि याची इनमें कोई अवैधता या अनियमितता उपदर्शित करने में विफल रहा है । तद्नुसार रिट याचिका खारिज की जाती है । (पैरा 13, 14 और 15)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2009]	2009 (75) ए. एल. आर. 606 (एस. सी.) : **निर्भय कुमार** बनाम **माया देवी** ;	9
[1999]	1999 (2) ए. आर. सी. 59 : **विजय भुदूर सिंह** बनाम **षष्ठम् अपर जिला न्यायाधीश, इटावा** ;	9
[1998]	1998 (1) ए. आर. सी. 109 : **मार्टिन हैरिस** बनाम **षष्ठम् अपर जिला न्यायाधीश और अन्य** ;	8
[1989]	1989 (1) ए. आर. सी. 217 : **अब्दुल जब्बार** बनाम **सप्तम् अपर जिला न्यायाधीश, गोरखपुर** ।	9

आरम्भिक (सिविल) प्रकीर्ण रिट अधिकारिता : 2011 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 33864.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री शरद मालवीय और इरशाद शर्मा

प्रत्यर्थी की ओर से –

न्यायमूर्ति राकेश तिवारी – याची के काउंसेल को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया ।

2. याची ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन यह रिट याचिका 2010 की अपील सं. 19 में अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय सं. 14, मुरादाबाद द्वारा तथा विहित प्राधिकारी द्वारा क्रमशः तारीख 31 मई, 2011 और तारीख 6 सितम्बर, 2010 को पारित निर्णय और आदेशों की विधिमान्यता और औचित्यता को आक्षेपित करते हुए फाइल की है जिनके द्वारा प्रत्यर्थी-मकान-मालकिन को उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किराए पर देने, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 (जिसे आगे संक्षेप

में 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 21(1)(क) के अधीन फाइल आवेदन को मंजूर किया गया है ।

3. अभिलेख से यह उपदर्शित होता है कि प्रत्यर्थी-मकान-मालकिन ने विवादित भवन जो कि मोहल्ला रेती स्ट्रीट, मुरादाबाद में स्थित है, वर्ष 1997 में क्रय किया था । इसके पश्चात् उसने तारीख 29 सितम्बर, 1997 को याची को एक सूचना जारी की जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ उसने यह कहा कि वह (याची) तारीख 1 जून, 1993 से 600/- रुपए प्रतिमास की दर पर दुकान का अनुज्ञप्तिधारी (लाइसेंसी) है ; उसकी अनुज्ञप्ति पर्यवसित कर दी गई है और यह निदेश दिया कि वह सूचना की तामील की तारीख से 7 दिन की अवधि के भीतर दुकान का शांतिपूर्ण कब्जा उसके सुपुर्द कर दे । याची ने यह अनुरोध करते हुए सिविल न्यायाधीश (एस. डी.), इलाहाबाद के न्यायालय में 1997 का मूल वाद सं. 857 संस्थित किया कि उसे मकान-मालकिन द्वारा विधि की प्रक्रिया के सिवाय प्रश्नगत दुकान से बेदखल न किया जाए और इसके लिए न्यायालय उक्त वाद में आदेश पारित करे ।

4. इसके पश्चात्, प्रत्यर्थी-मकान-मालकिन ने अधिनियम की धारा 21(1)(क) के अधीन एक आवेदन फाइल किया जिसे 2004 के पी. ए. मामला सं. 6 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया था । यह आवेदन इस आधार पर विवादित दुकान की निर्मुक्ति के लिए फाइल किया गया था कि उसे उस दुकान की अपने पुत्र को कारबार कराने के लिए आवश्यकता है क्योंकि उसका पुत्र अपनी शिक्षा पूरी करने के पश्चात् बेकार बैठा है । आवेदन 2004 के पी. ए. मामला सं. 6 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया था । सूचना की तामीली के पश्चात् याची ने अपना लिखित कथन फाइल करके निर्मुक्ति आदेश का विरोध किया और मकान-मालकिन द्वारा निर्मुक्ति आवेदन में किए गए अभिकथनों से इनकार किया और यह कथन किया कि मकान-मालकिन की आवश्यकता न तो वास्तविक है और न ही सद्भाविक है । उसने यह भी पक्षकथन किया कि मकान-मालकिन का पुत्र बेकार नहीं बैठा हुआ था अपितु वह अपने पिता के जो एक मिनी ट्रक का मालिक था, साथ परिवहन का कारबार कर रहा था । इस छोटे ट्रक का मेक टाटा 407 है और रजिस्ट्रीकरण सं. यू पी 20 ए 0377 बताया गया था । यह भी कहा गया था कि मकान-मालकिन के पास इसी क्षेत्र में दूसरी खाली दुकान है जिसमें वह अपने पुत्र को कारबार करा सकती है ; याची ने एक खाली दुकान लेने का प्रयास किया था किन्तु वह अपने प्रयास में

सफल नहीं हो सका और उसने किराया नियंत्रण और बेदखली अधिकारी के समक्ष भी दुकान के आबंटन के लिए आवेदन किया था किन्तु उसे कोई दुकान आबंटित नहीं की गई ।

5. ऐसा प्रतीत होता है कि याची ने तारीख 3 मई, 2010 को लिखित कथन में संशोधन के लिए एक आवेदन भी फाइल किया कि मकान-मालकिन ने 6 मास की पूर्व सूचना दिए बिना अधिनियम की धारा 21(1)(ख) के अधीन निर्मुक्ति आवेदन फाइल किया है । सूचना देना आज्ञापक है । निचले न्यायालय ने इस पर आक्षेप आमंत्रित करने के पश्चात् तारीख 17 मई, 2010 के आदेश द्वारा याची का संशोधन आवेदन खारिज कर दिया । इसके पश्चात्, विहित प्राधिकारी द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए तारीख 6 सितम्बर, 2010 के निर्णय और आदेश द्वारा निर्मुक्ति आवेदन विनिश्चित किया गया था कि याची 900/- रुपए प्रतिमास की दर से प्रश्नगत दुकान का किराएदार था ; मकान-मालकिन का पुत्र अपने पिता का मिनी ट्रक चलाता था और आत्मनिर्भर रूप से नियोजित नहीं था इसलिए उसे अपने कुटुम्ब की आय में वृद्धि करने के लिए स्वयं अपना कारबार करने का अधिकार है । न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार किया कि किराएदार-याची द्वारा इस आशय का कोई साक्ष्य पेश नहीं किया गया था कि मकान-मालकिन का पुत्र स्थायी सेवा में था या उसकी किसी अन्य स्वतंत्र स्रोत से आय थी । न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि मकान-मालकिन का पुत्र विवाहित था और अपने कुटुम्ब की आजीविका का अर्जन करने के लिए अपने पिता के ट्रक पर स्वयं चालक का कार्य करता था और मात्र इस कारण से कि वह परिस्थितियों के अधीन अपने पिता का ट्रक चलाता था, यह अर्थ नहीं निकाला जा सकता कि मकान-मालकिन अपने पुत्र को स्वतंत्र कारबार कराने के लिए उसके बेहतर भविष्य की चिंता नहीं कर सकती और मकान-मालकिन की आवश्यकता वास्तविक और सद्भाविक नहीं थी ।

6. जहां तक मकान-मालकिन की अभिकथित खाली दुकान का संबंध है, न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि मकान-मालकिन के पास ऐसी कोई वैकल्पिक दुकान नहीं है जो उसके पुत्र के कारबार के लिए उपयुक्त हो और इसलिए दुकान की जो याची की किराएदारी में थी, आवश्यकता उचित, वास्तविक और सद्भाविक थी ।

7. जहां तक धारा 16(1)(क) के अधीन तुलनात्मक कठिनाई का संबंध है, न्यायालय ने पक्षकारों के साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात्

यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि याची औषधियों का थोक कारबार करता था और इसलिए स्थान का परिवर्तन उसके कारबार को प्रभावित नहीं करेगा । न्यायालय ने याची की इस दलील को खारिज कर दिया कि एकमात्र विवादित दुकान ही उसके कुटुम्ब की आजीविका का साधन है । न्यायालय ने साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि याची के पुत्र अपनी दुकानों में स्वतंत्र रूप से कारबार कर रहे हैं और वे किसी भी प्रकार से याची पर निर्भर नहीं हैं । न्यायालय ने इन निष्कर्षों के आधार पर यह मत व्यक्त किया कि तुलनात्मक कठिनाई मकान-मालकिन के पक्ष में जाती है न कि किराएदार-याची के पक्ष में और यदि दुकान निर्मुक्त नहीं की जाती है तो मकान-मालकिन को अपूर्णनीय क्षति होगी जिसे धन के रूप में प्रतिकारित नहीं किया जा सकता और इसलिए किराएदार को अधिनियम की धारा 16(2) का कोई फायदा मंजूर नहीं किया जा सकता ।

8. इसके पश्चात्, न्यायालय ने उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किराए पर देने, किराया और बेदखली का विनियमन) नियम, 1972 के नियम 16 के उपबंधों पर विचार करने और वादी द्वारा निर्दिष्ट **मार्टिन हैरिस** बनाम **षष्ठम् अपर जिला न्यायाधीश और अन्य**[1] वाले मामले में अधिकथित विधि पर विचार करने के पश्चात् मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "स्पष्टतया उपबंध किराएदार के फायदे और संरक्षण के लिए अधिनियमित किया गया है । यह किराएदार का अधिकार है कि वह इस पर बल दे या इसे त्यक्त करे । निस्संदेह, यह सही है कि यह ऐसे किराएदारों के वर्ग के लिए अधिनियमित किया गया है जो मौजूदा किराएदार हैं और जिनके परिसर को बाद में ऐसे मकान-मालिकों द्वारा क्रय कर लिया गया है जो अधिनियम की धारा 32(1)(क) द्वारा यथा परिकल्पित सद्भाविक अपेक्षा के आधार पर मौजूदा किराएदारों को बेदखल करना चाहते हैं । यह संरक्षण अभी भी ऐसे किराएदारों को उपलब्ध है जैसा कि परन्तुक में उल्लिखित है, यह संरक्षण ऐसे संबंधित किराएदार को दिया जाएगा जिसे इसको स्वयं पाने का अधिकार है चाहे उसने इसका फायदा लिया हो या नहीं । यह मूल्यांकन करना सरल है कि एक ओर मकान-मालिक और दूसरी ओर किराएदार के बीच अधिनियम की धारा 21(1)(क) के

---

[1] 1998 (1) ए. आर. सी. 109.

अधीन कार्यवाहियां चलाना आसान हैं । ये कार्यवाहियां लोक प्रकृति की नहीं हैं और न ही इनमें कोई लोक हित अन्तर्वलित है । इसमें एक ओर केवल मकान-मालिक का वैयक्तिक हित है और दूसरी ओर किराएदार का हित मकान-मालिक के हित से टकराता है और इसलिए विहित अधिकारी द्वारा न्यायनिर्णयन किए जाने की आवश्यकता है .....। अतः सूचना की तामील के पश्चात् किराएदार को 6 मास का समय दिया जाना उसे अपनी वास-सुविधा को अवस्थित करने के लिए समर्थ बनाना है और मामले को आपस में सुलझाना है या उस स्थिति में वैकल्पिक आवास/दुकान का प्रबन्ध करना है जहां किराएदार यह महसूस करता है कि मकान-मालिक का बेहतर मामला बनता है । किराएदार को इस प्रकार का संरक्षण नैसर्गिक रूप से वैयक्तिक रूप से दिया गया है और वह उसे त्यक्त कर सकता है ।"

9. न्यायालय ने **निर्भय कुमार** बनाम **माया देवी**[1], **विजय भुदूर सिंह** बनाम **पष्ठम् अपर जिला न्यायाधीश, इटावा**[2] और **अब्दुल जब्बार** बनाम **सप्तम् अपर जिला न्यायाधीश, गोरखपुर**[3] वाले मामलों में दिए गए विनिश्चयों का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि किराएदार-याची ने अपने अभिवचनों में अधिनियम की धारा 21 के अधीन सूचना की तामील के संबंध में कोई कथन नहीं किया है और इसलिए उसने इस अभिवचन को त्यक्त कर दिया है जिसे संशोधन द्वारा अभिलेख पर नहीं लाया जा सकता है क्योंकि उसके पास वादपत्र को नये सिरे से फाइल करने के लिए वादपत्र वापस लेने के लिए आदेश 23, नियम 3 के अधीन विकल्प था । अतः सूचना किराएदार को विधिक रूप से दी गई थी । अतः विहित प्राधिकारी ने तारीख 6 सितम्बर, 2010 के निर्णय और आदेश द्वारा अधिनियम की धारा 21(1)(क) के अधीन फाइल मकान-मालकिन के निर्मुक्ति आवेदन को खर्चे सहित मंजूर कर लिया और याची-किराएदार को यह निदेश दिया कि वह एक मास के भीतर प्रश्नगत दुकान को खाली करके उसका शांतिपूर्ण कब्जा मकान-मालकिन को सौंप दे । न्यायालय ने मकान-मालकिन को भी यह निदेश दिया कि वह किराएदार को प्रतिकर के रूप में दो वर्ष के किराए के समान धनराशि का संदाय करे जैसा कि

---

[1] 2009 (75) ए. एल. आर. 606 (एस. सी.).

[2] 1999 (2) ए. आर. सी. 59.

[3] 1989 (1) ए. आर. सी. 217.

अधिनियम की धारा 21 के परन्तुक में उपबंधित है ।

10. विहित प्राधिकारी के उपर्युक्त आदेश से व्यथित होकर किराएदार-याची ने जिला न्यायाधीश, मुरादाबाद के समक्ष 2010 की किराया नियंत्रण अपील सं. 19 फाइल की । उक्त अपील अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय सं. 14, मुरादाबाद द्वारा सुनी और विनिश्चित की गई थी और उसने तारीख 31 मई, 2011 के आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा इस प्रकार अभिनिर्धारित करते हुए विहित प्राधिकारी के निर्णय और आदेश की पुष्टि की :–

> "25. अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित निर्णय दिनांकित 6.9.2010 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा यू. पी. एक्ट 13 सन् 1972 के नियम 16(1)(ए) के बिन्दु पर उभय पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य व तथ्यों पर विस्तार से चर्चा की है और यह निर्धारित किया है कि –
>
> > 'याची की आवश्यकता अत्यन्त महत्वपूर्ण है और यदि उसके पक्ष में कथित दुकान को अवमुक्त नहीं किया जाता है तो उसे अपूर्णनीय क्षति होगी, धारा 16(2)(1) का लाभ विपक्षी को नहीं दिया जा सकता ।'
>
> 26. अधीनस्थ न्यायालय द्वारा यू. पी. एक्ट 13 सन् 1972 की धारा 21(1)(ए) व धारा 34 पर भी विस्तार से चर्चा की गई और उभय पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए तथ्यों व साक्ष्य की विस्तार से समीक्षा की गई है । अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अपने निर्णय में यह निर्धारित किया गया है कि –
>
> > 'व्यवसाय का स्थान परिवर्तित करने पर कोई प्रतिकूल प्रभाव विपक्षी पर नहीं पड़ेगा ।'
>
> 27. सद्भावी आवश्यकता, तुलनात्मक कठिनाई व अपूर्णनीय क्षति के बिन्दुओं पर भी अधीनस्थ न्यायालय द्वारा विस्तार से चर्चा की गई है और प्रस्तुत की गई विधि व्यवस्थाओं पर विचार किया गया है और यह निर्धारित किया गया है कि उत्तरदाता/वादी तद्नुसार वादिनी का वाद अधीनस्थ न्यायालय द्वारा उसके पक्ष में निर्णीत किया गया है ।
>
> 28. अधीनस्थ न्यायालय द्वारा यू. पी. एक्ट 13 सन् 1972 की धारा 20 पर भी चर्चा की गई है और यह निर्धारित किया गया है कि

उक्त अधिनियम की धारा 20 व 21 के तहत संयुक्त नोटिस विपक्षी (अपीलार्थी) को कथित दुकान खाली करने के संबंध में दिया गया था और पर्याप्त समय दिए जाने के बावजूद जब अपीलार्थी (प्रतिवादी) द्वारा उक्त दुकान को खाली नहीं किया गया तब उसके द्वारा यह वाद प्रस्तुत किया गया ।

29. मूल पत्रावली पी. ए. वाद सं. 06/2004 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि उत्तरदाता/वादिनी द्वारा दिनांक 29.9.1999 को नोटिस विपक्षी को कथित दुकान खाली करने की बाबत दिया गया था किन्तु उसके उपरान्त भी वर्ष 2004 तक अपीलार्थी द्वारा उक्त दुकान को खाली नहीं किया गया बल्कि उसकी ओर से यह कथन प्रस्तुत किया गया कि उसने दुकान को तलाश करने का बहुत प्रयास किया लेकिन उसे उपयुक्त दुकान अपने कारोबार हेतु नहीं मिल सकी । प्रतिवादी-अपीलार्थी की ओर से प्रस्तुत किया गया यह कथन इन परिस्थितियों में जब कि उसे सात वर्ष का समय दिया जा चुका है, स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है और अधीनस्थ न्यायालय द्वारा इस बिन्दु पर भी विस्तार से विचार किया गया है ।

30. जहां तक सद्भावी व वास्तविक आवश्यकता का संबंध है, अपीलार्थी/प्रतिवादी की ओर से यह कहा गया है कि वादिया का पुत्र गाड़ी चलाने का काम करता था इसलिए उसे दुकान की सद्भावी आवश्यकता नहीं थी और वह जबरदस्ती दुकान खाली कराना चाहती थी जब कि विभिन्न विधि व्यवस्थाओं के अनुसार किराएदार मकान-मालिक को निबंधन और शर्तें डिक्टेट नहीं कर सकता कि वह क्या करे और क्या न करे जब कि सात वर्ष का अन्तराल आवश्यकता से अधिक होता है कि कोई किराएदार अपनी नई दुकान को तलाश कर ले और बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार कार्य करे इसलिए प्रतिवादी का यह कहना कि वादिया की दुकान को खाली कराने की आवश्यकता वास्तविक व सद्भावी नहीं थी, स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है और इस संबंध में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय सही था ।

31. जहां तक तुलनात्मक कठिनाई का संबंध है, यदि लैण्ड-लार्ड अथवा उसका वारिस मजबूर होकर अल्पकाल के लिए अपनी जीविका चलाने के लिए कोई कार्य कर लेता है तो उसे उसकी जीविका का स्थायी साधन नहीं माना जाना चाहिए और न ही अपनी शर्तों के अनुसार कोई किराएदार लैण्डलार्ड को अथवा उसके पुत्र व

पुत्री को यह शर्तें डिक्टेट नहीं कर सकता कि वह ड्राइवर का ही काम करे और अन्य कोई काम न करे और इस बिन्दु पर भी विचार करने के उपरान्त अधीनस्थ न्यायालय द्वारा जो निर्णय दिया, वह सही है और उसमें किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है ।

32. जहां तक अपूर्णनीय क्षति का संबंध है, इस बिन्दु पर भी अधीनस्थ न्यायालय द्वारा विस्तार से विचार किया गया है और यह निर्धारित किया गया है कि यदि वादियों को कथित दुकान खाली कराकर नहीं दिखलाई जाती है तो उसे अपूर्णनीय क्षति होगी जब प्रतिवादी/अधीनस्थ को सात वर्ष के अन्तराल का समय जो पर्याप्त से भी बहुत अधिक है, दिए जाने के बावजूद यदि वह दुकान की वैकल्पिक व्यवस्था नहीं करता है तो यह उसका दुराग्रह है और इन परिस्थितियों में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा जो यह निर्धारित किया गया है कि वादी को अधिक अपूर्णनीय क्षति होगी और प्रतिवादी को कोई क्षति नहीं होगी, सही है । अतः इस बिन्दु पर भी हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है ।

33. उभय पक्षों की ओर से प्रस्तुत विधि व्यवस्थाओं पर विचार करने के उपरान्त तथा वर्तमान प्रकरण के समस्त तथ्यों, परिस्थितियों व साक्ष्य पर तथा अधीनस्थ न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय की समीक्षा करने के उपरान्त मैं इस राय का हूं व इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि प्रस्तुत की गई यह अपील बलहीन है तथा अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित निर्णय दिनांकित 6.9.2010 सही था जिसमें किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है बल्कि उक्त निर्णय पुष्ट किए जाने योग्य है तथा अपील व्यय सहित निरस्त किए जाने योग्य है ।

आदेश

अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत यह रैन्ट कन्ट्रोल अपील व्यय सहित निरस्त की जाती है । अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित निर्णय दिनांक 6.9.2010 की पुष्टि की जाती है ।

आदेश की प्रति के साथ अधीनस्थ न्यायालय को पत्रावली अविलम्ब भेजी जाए ।

दिनांक 31.5.2011

ह. अस्पष्ट
(विनोद कुमार यादव)

अपर जनपद न्यायाधीश
कोर्ट नं. 14, मुरादाबाद ।"

11. याची के काउंसेल ने यह दलील दी है कि अधिनियम की धारा 21 स्पष्टतः यह उपबंध करती है कि जहां प्रश्नगत परिसर बाद में क्रय किया गया हो वहां क्रेता इस बाध्यता के अधीन है कि वह अपनी वैयक्तिक आवश्यकता के आधार पर भवन की निर्मुक्ति के लिए आवेदन फाइल करने से पूर्व मौजूदा किराएदार को 6 मास की सूचना दे किन्तु वर्तमान मामले में मकान-मालकिन ने 6 मास की सूचना नहीं दी जैसा कि अधिनियम की धारा 21 में उपबंधित है । उन्होंने यह भी दलील दी कि यह स्वीकृत तथ्य है कि विवादित दुकान याची को किसी आबंटन के आदेश के बिना तारीख 1 जून, 1993 को 600/- रुपए मासिक किराए पर दी गई थी और इसलिए मकान-मालकिन अधिनियम के उपबंधों के अधीन कोई कार्यवाही आरम्भ नहीं कर सकती और इसलिए उसके द्वारा अधिनियम की धारा 21(1)(क) के अधीन फाइल निर्मुक्ति आवेदन ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है क्योंकि किराएदारी अधिनियम के उपबंधों के अतिक्रमण में सृजित हुई है । अंततः यह दलील दी गई है कि याची एक अनुज्ञप्तिधारी होने के नाते उसे अधिनियम के उपबंध लागू नहीं होते और इस आधार पर भी निर्मुक्ति आवेदन ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है ।

12. उन्होंने यह भी दलील दी कि किसी भी स्थिति में मकान-मालकिन का आवेदन उसकी वास्तविक और सद्भाविक आवश्यकता के आधार पर नहीं था क्योंकि उसने वर्ष 2007 में विपिन गुप्ता नामक व्यक्ति के साथ प्रश्नगत दुकान को विक्रीत करने के लिए करार किया था और निचले न्यायालय ने मकान-मालकिन की आवश्यकता वास्तविक और सद्भाविक अभिनिर्धारित करते हुए मामले के इस पहलू पर विचार नहीं किया है । काउंसेल की यह दलील एक विज्ञापन पर आधारित है जो "दैनिक जागरण" में प्रकाशित हुआ था और यह अभिकथित किया गया है कि उसके द्वारा मकान-मालकिन ने अपने मकान के विक्रय के लिए विज्ञापन जारी किया था । निचले न्यायालय द्वारा इस विज्ञापन को त्यक्त नहीं किया है । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि याची ने विज्ञापन की एक फोटोप्रति फाइल की है जो साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है ।

13. याची के काउंसेल को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् मेरा यह मत है कि याची चाहे वह अनुज्ञप्तिधारक हो या किराएदार, उसे अधिनियम के उपबंध लागू होते हैं । यदि अनुज्ञप्तिधारक

किसी भवन को या उसके किसी भाग को अनुज्ञप्ति के अधीन लेता है और अधिनियम में विनिर्दिष्ट अवधि के पश्चात् इसे खाली नहीं करता है तो उसके विरुद्ध 1972 के अधिनियम सं. 13 के अधीन विधि के अनुसार कार्यवाहियां की जा सकती हैं जैसा कि अधिनियम की धारा 2-क के उपखंड (5) के अधीन उपबंधित हैं । यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि याची-किराएदार ने स्वयं 1987 का मूल वाद सं. 857 सिविल न्यायालय में यह कहते हुए फाइल किया था कि उसे विधि के अनुसरण के सिवाय बेदखल न किया जाए और मकान-मालकिन द्वारा अधिनियम की धारा 21(1)(क) के अधीन निर्मुक्ति आवेदन के अधीन बेदखल न किया जाए क्योंकि वह दुकान को खाली नहीं करना चाहता ।

14. याची के काउंसेल द्वारा सूचना की अवधि के संबंध में दलील स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है क्योंकि यह सुस्थापित विधि है कि सूचना पूर्व में दी जा सकती है किन्तु युक्तियुक्त अवसर दिया गया है और पश्चात्वर्ती मकान-मालकिन द्वारा क्रय करने के 6 मास की अवधि के भीतर उसे बेदखल नहीं किया जा सका । उपबंधित 6 मास की अवधि किराएदार को वैकल्पिक आवास की व्यवस्था करने के लिए युक्तियुक्त अवसर देना है । वर्तमान मामले में निचले न्यायालयों ने तथ्य का यह स्पष्ट निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि किराएदार ने 1997 में सूचना की प्राप्ति के पश्चात् भी युक्तियुक्त अवधि के भीतर दुकान खाली नहीं की यद्यपि मुकदमेबाजी में 7 वर्ष की अवधि बीत चुकी है । निचले न्यायालयों ने यह ठीक ही निष्कर्ष निकाला है कि विज्ञापन की फोटोप्रति का तब तक अवलंब नहीं लिया जा सकता जब तक कि इसे विधि के अनुसार साबित न कर दिया जाए और उसके पश्चात् भी यह द्वितीयक साक्ष्य का एक भाग हो सकता है । निचले न्यायालयों ने याची के इस पक्षकथन को ठीक ही त्यक्त किया है कि उसने वैकल्पिक व्यवस्था को तलाश करने के लिए सम्यक् प्रयास किए हैं । मकान-मालकिन को अपने पुत्र को स्वतंत्र रूप से कारबार कराने का अधिकार है । निचले न्यायालयों ने मामले के सभी पहलुओं पर विचार किया है, विशेषतया अधिनियम की धारा 16 के उपबंध और नियमों पर जिनकी आक्षेपित आदेश में चर्चा की गई है और यह अभिनिर्धारित किया गया है कि मकान-मालकिन की अपने पुत्र को कारबार कराने के लिए विवादित दुकान की आवश्यकता वास्तविक और सद्भाविक है और वह किराएदार के मुकाबले तुलनात्मक रूप से अधिक कठिनाई उठा रही है क्योंकि किराएदार के पुत्र पहले से ही अपना कारबार कर रहे हैं ।

15. निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित तथ्य के एक जैसे निष्कर्षों और उपर्युक्त कारणों को दृष्टिगत करते हुए आक्षेपित निर्णय और आदेश पुष्ट किए जाने योग्य हैं क्योंकि याची इनमें कोई अवैधता या अनियमितता उपदर्शित करने में विफल रहा है । तद्नुसार रिट याचिका खारिज की जाती है ।

16. याची के काउंसेल ने इस प्रक्रम पर विवादित दुकान को खाली करने के लिए याची को कुछ समय देने के लिए अनुरोध किया है । इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि इस न्यायालय के समक्ष इस पर विवाद नहीं किया गया है कि याची के जो विवादित दुकान में अपनी दुकान चला रहा है, अतिरिक्त उसके दो पुत्र भी स्वतंत्र रूप से कारबार कर रहे हैं उसे दुकान खाली करने के लिए 6 मास का समय मंजूर किया जाता है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मह.

(2013) 1 सि. नि. प. 65 **इलाहाबाद**

रफीकुन्निसा

बनाम

कलक्टर/जिला मजिस्ट्रेट, देवरिया और अन्य

तारीख 7 जुलाई, 2011

न्यायमूर्ति सिबग़त उल्ला ख़ां

संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 का 14) – धारा 58 – कृषि भूमि – बंधक – विक्रय-विलेख द्वारा अन्तरण – नामांतरण पर आक्षेप – ऐसी किसी भूमि को भी जो बंधक हो, विक्रीत किया जा सकता है तथापि, ऐसी भूमि बंधककर्ता के बंधकाधीन मानी जाएगी जब तक कि ऐसे बंधक का विमोचन न करा लिया गया हो ।

याची ने ग्राम भरसुली बाजार, डाकखाना अबू-बकर नगर, जिला देवरिया में स्थित कृषि भूखंड सं. 659 क्षेत्र 28 एकड़ को तारीख 20 मार्च, 1998 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख द्वारा प्रत्यर्थी सं. 4 मुबारक अली से क्रय किया था । इसके पश्चात् याची ने राजस्व अभिलेख में अपने नाम का नामांतरण कराने के लिए आवेदन किया था । मामला, मामला सं. 636 के

रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया था और नामांतरण आवेदन तारीख 25 मई, 1998 को मंजूर किया गया था । प्रत्यर्थी सं. 3 जिला खादी ग्राम उद्योग ने अपने प्रबन्धक (ग्रामीण), देवरिया द्वारा इस आधार पर तारीख 25 मई, 1998 के नामांतरण आदेश को वापस लेने का अनुरोध करते हुए तारीख 15 मार्च, 2000 को प्रत्यास्थापन आवेदन फाइल किया कि विवादित भूमि प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा उनके हक में हक विलेख जमा करके बंधक की गई थी । आवेदन तारीख 28 जुलाई, 2000 को मंजूर किया गया था और तारीख 25 मई, 1998 का आदेश अपास्त किया गया था । याची ने उक्त आदेश के विरुद्ध 2000 का पुनरीक्षण सं. 67 फाइल किया जो तारीख 10 नवम्बर, 2000 को खारिज कर दिया गया । इस रिट याचिका द्वारा तारीख 28 जुलाई, 2000 और 10 नवम्बर, 2000 के आदेशों को आक्षेपित किया गया है । रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – तथापि, ऐसी किसी भूमि को भी जो बंधक के अधीन हो, उचित रूप से विक्रीत किया जा सकता है जो बंधककर्ता के अधिकार के अन्तर्गत अंतरण के बराबर होगी । यदि प्रत्यर्थी सं. 3 ने बंधक विलेखों के निष्पादन के पश्चात् राजस्व अभिलेख में प्रत्यर्थी सं. 4 के नाम की प्रविष्टि को प्रश्नगत नहीं किया तो भी वह प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा सम्पत्ति याची को विक्रीत करने के पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 4 के स्थान पर राजस्व अभिलेख में याची के नाम के नामांतरण को प्रश्नगत नहीं कर सकता । तथापि, प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा याची के हक में विवादित भूमि के विक्रय के बावजूद और उसका नाम राजस्व अभिलेख में नामांतरित होने के बावजूद बंधक भूमि के संबंध में प्रत्यर्थी सं. 3 के जो अधिकार हैं वे विधि द्वारा अनुज्ञात सीमा तक अक्षुण्ण बने रहेंगे । किसी भी स्थिति में यदि यह उपधारित किया जाता है कि प्रत्यर्थी सं. 4 के हक में बंधक के कारण भूमि विक्रीत नहीं की जा सकती तो भी उक्त प्रश्न नामांतरण कार्यवाहियों में विनिश्चित नहीं किया जा सकता । तद्नुसार, रिट याचिका मंजूर की जाती है । दोनों आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाते हैं । तारीख 25 मई, 1998 के आदेश को जिसके द्वारा याची के नाम को नामांतरित करने का निदेश दिया गया है, प्रत्यास्थापित किया जाता है । तथापि, यह स्पष्ट किया जाता है कि विवादित भूमि के संबंध में प्रत्यर्थी सं. 3 के जो भी विधिक अधिकार हैं, वे अक्षुण्ण रहेंगे और प्रत्यर्थी सं. 3 के उक्त अधिकार के प्रवर्तन के लिए प्रत्यर्थी सं. 3 इस बात के लिए पूर्णतया स्वतंत्र होगा कि वह समुचित कार्यवाहियां आरम्भ करे । यह भी स्पष्ट किया जाता है कि यदि ऐसी कार्यवाहियां आरम्भ की जाती हैं तो याची को सभी अनुज्ञेय विधिक

अभिवचन करने के लिए अनुज्ञात किया जाएगा । (पैरा 5, 7 और 8)

आरम्भिक (सिविल) प्रकीर्ण रिट अधिकारिता : 2001 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 97.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री एच. एस. एन. त्रिपाठी

प्रत्यर्थियों की ओर से मुख्य स्थायी काउंसेल

न्यायमूर्ति सिबग़त उल्ला ख़ां – याची के विद्वान् काउंसेल और प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 की ओर से विद्वान् स्थायी काउंसेल को सुना । पर्याप्त तामीली के बावजूद प्रत्यर्थी सं. 3 और 4 की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ है ।

2. याची ने ग्राम भरसुली बाजार, डाकखाना अबू-बकर नगर, जिला देवरिया में स्थित कृषि भूखंड सं. 659 क्षेत्र 28 एकड़ को तारीख 20 मार्च, 1998 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख द्वारा प्रत्यर्थी सं. 4 मुबारक अली से क्रय किया था । इसके पश्चात् याची ने राजस्व अभिलेख में अपने नाम का नामांतरण कराने के लिए आवेदन किया था । मामला, मामला सं. 636 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया था और नामांतरण आवेदन तारीख 25 मई, 1998 को मंजूर किया गया था । प्रत्यर्थी सं. 3 जिला खादी ग्राम उद्योग ने अपने प्रबन्धक (ग्रामीण), देवरिया द्वारा इस आधार पर तारीख 25 मई, 1998 के नामांतरण आदेश को वापस लेने का अनुरोध करते हुए तारीख 15 मार्च, 2000 को प्रत्यास्थापन आवेदन फाइल किया कि विवादित भूमि प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा उनके हक में हक विलेख जमा करके बंधक की गई थी । आवेदन तारीख 28 जुलाई, 2000 को मंजूर किया गया था और तारीख 25 मई, 1998 का आदेश अपास्त किया गया था । याची ने उक्त आदेश के विरुद्ध 2000 का पुनरीक्षण सं. 67 फाइल किया जो तारीख 10 नवम्बर, 2000 को खारिज कर दिया गया । इस रिट याचिका द्वारा तारीख 28 जुलाई, 2000 और 10 नवम्बर, 2000 के आदेशों को आक्षेपित किया गया है ।

3. प्रत्यर्थी सं. 3 का यह पक्षकथन है कि कृषि भूमि तारीख 17 जनवरी, 1997 को बंधक रखी गई थी ।

4. याची के विद्वान् काउंसेल ने प्रथम दलील यह दी है कि साम्यापूर्ण बंधक (हक विलेखों को जारी करके बंधक) मुम्बई, कलकत्ता, दिल्ली और

मद्रास के प्रेसिडेन्सी नगरों में ही अनुज्ञेय है जैसा कि सम्पत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 58 के अधीन उपबंधित है । उक्त दलील स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है क्योंकि बाद में उत्तर प्रदेश राज्य की विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा उक्त धारा के अधीन सैकड़ों कस्बों और नगरों को अधिसूचित किया गया है । राज्य सरकार ने तारीख 26 मार्च, 1976 की अधिसूचना द्वारा जो कि तारीख 28 मार्च, 1976 के राजपत्र में प्रकाशित की गई है, उक्त प्रयोजन के लिए देवरिया सहित विभिन्न नगरों को अधिसूचित किया है । इसके पश्चात् उत्तर प्रदेश राज्य सरकार ने राजपत्र में तारीख 30 अप्रैल, 1977 को प्रकाशित अधिसूचना द्वारा विभिन्न जिलों के विभिन्न छोटे कस्बों को उक्त प्रयोजन के लिए अधिसूचित किया है जिसमें विभिन्न जिलों के 10 छोटे कस्बे भी सम्मिलित हैं और जिनमें जिला देवरिया के 10 छोटे कस्बे/नगर भी सम्मिलित हैं ।

5. तथापि, ऐसी किसी भूमि को भी जो बंधक के अधीन हो, उचित रूप से विक्रीत किया जा सकता है जो बंधककर्ता के अधिकार के अन्तर्गत अंतरण के बराबर होगी । यदि प्रत्यर्थी सं. 3 ने बंधक विलेखों के निष्पादन के पश्चात् राजस्व अभिलेख में प्रत्यर्थी सं. 4 के नाम की प्रविष्टि को प्रश्नगत नहीं किया तो भी वह प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा सम्पत्ति याची को विक्रीत करने के पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 4 के स्थान पर राजस्व अभिलेख में याची के नाम के नामांतरण को प्रश्नगत नहीं कर सकता ।

6. तद्नुसार, दोनों आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाने योग्य हैं ।

7. तथापि, प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा याची के हक में विवादित भूमि के विक्रय के बावजूद और उसका नाम राजस्व अभिलेख में नामांतरित होने के बावजूद बंधक भूमि के संबंध में प्रत्यर्थी सं. 3 के जो अधिकार हैं वे विधि द्वारा अनुज्ञात सीमा तक अक्षुण्ण बने रहेंगे । किसी भी स्थिति में यदि यह उपधारित किया जाता है कि प्रत्यर्थी सं. 4 के हक में बंधक के कारण भूमि विक्रीत नहीं की जा सकती तो भी उक्त प्रश्न नामांतरण कार्यवाहियों में विनिश्चित नहीं किया जा सकता ।

8. तद्नुसार, रिट याचिका मंजूर की जाती है । दोनों आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाते हैं । तारीख 25 मई, 1998 के आदेश को जिसके द्वारा याची के नाम को नामांतरित करने का निदेश दिया गया है, प्रत्यास्थापित किया जाता है । तथापि, यह स्पष्ट किया जाता है कि विवादित भूमि के संबंध में प्रत्यर्थी सं. 3 के जो भी विधिक अधिकार हैं, वे अक्षुण्ण रहेंगे और

प्रत्यर्थी सं. 3 के उक्त अधिकार के प्रवर्तन के लिए प्रत्यर्थी सं. 3 इस बात के लिए पूर्णतया स्वतंत्र होगा कि वह समुचित कार्यवाहियां आरम्भ करे । यह भी स्पष्ट किया जाता है कि यदि ऐसी कार्यवाहियां आरम्भ की जाती हैं तो याची को सभी अनुज्ञेय विधिक अभिवचन करने के लिए अनुज्ञात किया जाएगा ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

मह.

केरल राज्य और अन्य

बनाम

लिली जार्ज और अन्य

तारीख 19 जुलाई, 2010

न्यायमूर्ति सी. एन. रामचन्द्रन नायर और न्यायमूर्ति पी. एस. गोपीनाथन

आय-कर अधिनियम, 1961 – धारा 15, 19 और 192 – सरकारी कर्मचारी – महंगाई भत्ता – भागतः भविष्य निधि खाते में जमा करना – आय-कर – महंगाई भत्ते के भुगतान पर स्त्रोत पर कर की कटौती – विधिमान्यता – यद्यपि सरकार धारा 192 के निबंधनों में महंगाई भत्ते के भुगतान को उसके भविष्य निधि खाते में जमा कर सकती है तथापि, सरकार कर्मचारियों के खाते में नियमित वेतन के भुगतान के रूप में महंगाई भत्ते की बकाया के भुगतान पर कर की वसूली नहीं कर सकती ।

यह अपीलें राज्य सरकार द्वारा फाइल की गई है, जिनमें विद्वान् एकल न्यायाधीश के उस विनिश्चय को चुनौती दी गई है जिसमें यह निदेश दिया गया है कि राज्य अपने कर्मचारियों-प्रत्यर्थियों को दिए गए महंगाई भत्ते की बकाया के भुगतान के स्त्रोत पर कर की कटौती करे और उनके भविष्य निधि के खाते में केवल अतिशेष ही जमा करे । राज्य ने यह दलील दी है कि यद्यपि महंगाई भत्ते के भुगतान के दायित्व का सरकार द्वारा अनुमोदन कर दिया गया है, तथापि, स्कीम भुगतान न करके धन भविष्य निधि खाते में जमा करने की है जो कि सरकार के पास है । तथापि, प्रत्यर्थियों ने यह दलील दी कि जब उन्होंने महंगाई भत्ते की किस्त अर्जित की तब वह उनकी वेतन आय में सम्मिलित किए जाने योग्य है और वे उस संदाय के दायी

हैं जो आय-कर अधिनियम की धारा 192 के अधीन स्रोत पर कर की कटौती के लिए आवश्यक है । रिट अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – सरकार द्वारा धारा 192 के निबंधनों में संबंधित कर्मचारी के अपने खाते में महंगाई भत्ते को वेतन के भुगतान के रूप में जमा करना सही है । तथापि, सरकार ने कर्मचारियों के खाते में नियमित वेतन के भुगतान के रूप में महंगाई भत्ते की बकाया के भुगतान पर भी कर की वसूली करने में गलती की है । धारा 192 के अधीन यह अपेक्षित है कि वेतन के रूप में संवितरित आय, जिसमें कर्मचारी के खाते में संदत्त या जमा की गई महंगाई भत्ते की बकाया भी सम्मिलित है, पर कटौती की जाएगी और धारा 192 के अधीन वसूली इस प्रकार संदत्त या खाते में जमा की गई राशि पर की जानी चाहिए । वस्तुतः आय-कर अधिनियम की धारा 15 के अधीन "वेतन" मद के अन्तर्गत "आय" में ऐसा देय वेतन, चाहे वह संदत्त किया गया हो या नहीं, सम्मिलित है । हमारा यह मत है कि भविष्य निधि खाते में महंगाई भत्ते की बकाया का जमा किया जाना, चाहे वह नियत अवधि के लिए जमा किया गया हो, भुगतान ही कहा जाएगा और किसी भी स्थिति में यह कर्मचारी को देय घोषित वेतन समझा जाएगा और इसलिए यह कर्मचारी का दायित्व है कि वह इस प्रकार महंगाई भत्ते की बकाया राशि के संदाय के रूप में जमा राशि को भी अगले निर्धारण वर्ष के लिए गणना में ले । इसलिए राज्य ने स्रोत पर कर की कटौती करने और उसे जमा करने का सही निर्णय लिया है । तथापि, वसूली आवश्यक रूप से महंगाई भत्ते की बकाया की जमा से ही की जानी चाहिए और कर्मचारी केवल स्रोत पर कटौती के पश्चात् भविष्य निधि खाते में जमा कुल धनराशि को जमा करने के हकदार हैं । दूसरे शब्दों में प्रत्येक कर्मचारी को देय महंगाई भत्ते की बकाया का कर भाग राज्य सरकार द्वारा केन्द्र सरकार को नकद संदत्त किया जाना चाहिए जो प्रत्येक कर्मचारी के लिए टी. डी. एस. के संबंध में होगा तथा इसका प्रमाणपत्र संबद्ध कर्मचारी को जारी किया जाना चाहिए । निस्संदेह बकाया कर्मचारी के भविष्य निधि खाते में जमा किया जा सकता है, जो नियत अवधि में निकासी के अध्यधीन होगा । इस प्रकार, इस संबंध में विद्वान् एकल न्यायाधीश ने ठीक ही अभिनिर्धारित किया है और हमें राज्य द्वारा फाइल की गई रिट अपीलों में ऐसा कोई बल प्रतीत नहीं होता जिसके द्वारा राज्य आय-कर अधिनियम के अधीन संवैधानिक उपबंधों से विपरीत किसी स्थिति को दर्शा सके । (पैरा 2)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2010 की रिट अपील सं. 1020 और 1132.

आय-कर अधिनियम, 1962 की धारा 192 के अधीन रिट अपीलें ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री एन. मनोज कुमार, सरकारी अधिवक्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री के. के. चन्द्रन पिल्लै

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सी. एन. रामचन्द्रन नायर ने दिया ।

न्या. नायर – यह अपीलें राज्य सरकार द्वारा फाइल की गई हैं, जिनमें विद्वान् एकल न्यायाधीश के उस विनिश्चय को चुनौती दी गई है जिसमें यह निदेश दिया गया है कि राज्य अपने कर्मचारियों-प्रत्यर्थियों को दिए गए महंगाई भत्ते की बकाया के भुगतान के स्रोत पर कर की कटौती करे और उनके भविष्य निधि के खाते में केवल अतिशेष ही जमा करे । राज्य ने यह दलील दी है कि यद्यपि महंगाई भत्ते के भुगतान के दायित्व का सरकार द्वारा अनुमोदन कर दिया गया है, तथापि, स्कीम भुगतान न करके धन भविष्य निधि खाते में जमा करने की है जो कि सरकार के पास है । तथापि, प्रत्यर्थियों ने यह दलील दी कि जब उन्होंने महंगाई भत्ते की किस्त अर्जित की तब वह उनकी वेतन आय में सम्मिलित किए जाने योग्य है और वे उस संदाय के दायी हैं जो आय-कर अधिनियम की धारा 192 के अधीन स्रोत पर कर की कटौती के लिए आवश्यक है ।

2. याची की ओर से उपस्थित सरकारी अधिवक्ता ने महंगाई भत्ते के भुगतान की स्कीम को निर्दिष्ट करते हुए यह दलील दी कि महंगाई भत्ते की बकाया का भुगतान भूतलक्षी प्रभाव से किया जाता है और कर्मचारी नकद के रूप में भुगतान पाने के हकदार नहीं हैं या वे उसे भविष्य निधि खाते से, जिसमें वह राशि जमा की गई है, निकालने के हकदार नहीं हैं । उन्होंने यह दलील दी कि नियत अवधि से पूर्व धनराशि न निकाल सकने का यह अर्थ है कि जब कर्मचारी के खाते में महंगाई भत्ते की धनराशि जमा कर दी गई है किन्तु वह उसे नियत अवधि के भीतर नहीं निकाल सकते । हमें ऐसा प्रतीत नहीं होता कि सरकार का यह दावा कि महंगाई भत्ते के बकाया के भुगतान को नियत अवधि में कर्मचारी के भविष्य निधि खाते में डालना अधिनियम की धारा 192 के अधीन स्रोत पर कर की कटौती की स्कीम पर प्रभाव डालता है । वस्तुतः राज्य का यह पक्षकथन नहीं है कि संबद्ध कर्मचारी के भविष्य निधि खाते में महंगाई भत्ते की बकाया को जमा करते समय धारा 192 के निबंधनों में वसूल किया जाना अपेक्षित है । हमारे मतानुसार सरकार द्वारा धारा 192 के निबंधनों में संबंधित कर्मचारी के अपने खाते में महंगाई भत्ते को वेतन के भुगतान के

रूप में जमा करना सही है । तथापि, सरकार ने कर्मचारियों के खाते में नियमित वेतन के भुगतान के रूप में महंगाई भत्ते की बकाया के भुगतान पर भी कर की वसूली करने में गलती की है । धारा 192 के अधीन यह अपेक्षित है कि वेतन के रूप में संवितरित आय, जिसमें कर्मचारी के खाते में संदत्त या जमा की गई महंगाई भत्ते की बकाया भी सम्मिलित है, पर कटौती की जाएगी और धारा 192 के अधीन वसूली इस प्रकार संदत्त या खाते में जमा की गई राशि पर की जानी चाहिए । वस्तुतः आय-कर अधिनियम की धारा 15 के अधीन "वेतन" मद के अन्तर्गत "आय" में ऐसा देय वेतन, चाहे वह संदत्त किया गया हो या नहीं, सम्मिलित है । हमारा यह मत है कि भविष्य निधि खाते में महंगाई भत्ते की बकाया का जमा किया जाना, चाहे वह नियत अवधि के लिए जमा किया गया हो, भुगतान ही कहा जाएगा और किसी भी स्थिति में यह कर्मचारी को देय घोषित वेतन समझा जाएगा और इसलिए यह कर्मचारी का दायित्व है कि वह इस प्रकार महंगाई भत्ते की बकाया राशि के संदाय के रूप में जमा राशि को भी अगले निर्धारण वर्ष के लिए गणना में ले । इसलिए राज्य ने स्रोत पर कर की कटौती करने और उसे जमा करने का सही निर्णय लिया है । तथापि, वसूली आवश्यक रूप से महंगाई भत्ते की बकाया की जमा से ही की जानी चाहिए और कर्मचारी केवल स्रोत पर कटौती के पश्चात् भविष्य निधि खाते में जमा कुल धनराशि को जमा करने के हकदार हैं । दूसरे शब्दों में प्रत्येक कर्मचारी को देय महंगाई भत्ते की बकाया का कर भाग राज्य सरकार द्वारा केन्द्र सरकार को नकद संदत्त किया जाना चाहिए जो प्रत्येक कर्मचारी के लिए टी. डी. एस. के संबंध में होगा तथा इसका प्रमाणपत्र संबद्ध कर्मचारी को जारी किया जाना चाहिए । निस्संदेह बकाया कर्मचारी के भविष्य निधि खाते में जमा किया जा सकता है, जो नियत अवधि में निकासी के अध्यधीन होगा । इस प्रकार, इस संबंध में विद्वान् एकल न्यायाधीश ने ठीक ही अभिनिर्धारित किया है और हमें राज्य द्वारा फाइल की गई रिट अपीलों में ऐसा कोई बल प्रतीत नहीं होता जिसके द्वारा राज्य आय-कर अधिनियम के अधीन संवैधानिक उपबंधों से विपरीत किसी स्थिति को दर्शा सके । परिणामतः रिट अपीलें खारिज की जाती हैं ।

रिट अपीलें खारिज की गईं ।

भ./मह.

दया कौर

बनाम

भारत संघ, रक्षा मंत्रालय और अन्य

तारीख 7 जुलाई, 2010

न्यायमूर्ति हकीम इम्तियाज़ हुसैन

जम्मू-कश्मीर संविधान, 1957 – अनुच्छेद 103 [सपठित गृह मंत्रालय, भारत सरकार का तारीख 16 मई, 1964 का पत्र सं. एफ.-6/19-63 और सेना आदेश सं. 380/60 तथा सेना नियम 13-II(iii)] – सेना सेवा – चिकित्सीय रूप से अयोग्य होने के कारण सेवा से निर्मोचन – सेवोन्मुक्त सिपाही को उपदान आदि का संदाय किया जाना – सिपाही की विधवा पत्नी द्वारा 40 वर्षों के पश्चात् पेंशन के निदेश के लिए रिट याचिका – याची को कोई अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता ।

याची का पति सेना में सिपाही था । उसे सेवा के दौरान चिकित्सीय रूप से अयोग्य हो जाने के कारण सेवोन्मुक्त किया गया था । उसे सेवा-मुक्ति के समय उपदान आदि दिया गया था किन्तु पेंशन का कोई उपबंध न होने के कारण पेंशन नहीं दी गई । याची ने 40 वर्ष के पश्चात् सेवक की विधवा होने के नाते सेवानिवृत्ति फायदों और पेंशन हेतु निदेश जारी करने के लिए यह रिट याचिका फाइल की । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह स्वीकार किया गया है कि याची के पति को तारीख 25 जुलाई, 1963 को चिकित्सीय आधार पर अयोग्य होने के कारण सेवा से उन्मोचित कर दिया गया था । प्रत्यर्थियों द्वारा यह कहा गया था कि उन्मोचित किए जाने के समय उसे सभी वैध बकाया राशि, अर्थात् सेवा उपदान के रु. 615/- तथा सेवांत जमा राशि के 516/- रुपए का संदाय कर दिया गया था । प्रत्यर्थियों ने यह भी कहा है कि याची के पति ने जम्मू-कश्मीर राज्य सरकार से भी अनुतोष प्राप्त किया है तथा पति की मृत्यु के पश्चात् याची भी उपरोक्त अनुतोष प्राप्त कर रही है । याची द्वारा इन तथ्यों का प्रत्याख्यान (इनकार) नहीं किया गया था । याची के पति को तारीख 25 जुलाई, 1963 को सेवा से उन्मोचित किया गया था तथा उसकी मृत्यु तारीख 18 फरवरी, 2003 को हुई थी । इस अवधि के दौरान उसे सेवा से

उन्मोचित किए जाते समय उसने प्रत्यर्थियों द्वारा दी गई धनराशि को स्वीकार किया और अपने जीवनकाल में प्रत्यर्थियों से किसी भी पेंशन का दावा नहीं किया । लगभग 40 वर्षों के अन्तराल के पश्चात् याची द्वारा मृतक सिपाही की पेंशन का दावा प्रस्तुत किया गया है, जिसका दावा मृतक सिपाही ने अपने जीवनकाल में कभी भी नहीं किया था । चूंकि याची ने यह दावा अपने पति रूप सिंह की ओर से प्रस्तुत किया है और उसके पति ने अपने जीवनकाल में कभी भी पेंशन का दावा नहीं किया था इसलिए न्यायालय का यह मत है कि अब याची इस प्रकार का कोई दावा करने से निवारित हो गई है, विशेषकर क्योंकि 40 वर्षों से भी अधिक का विलम्ब होने पर भी याची अपनी व्यथा वर्णित नहीं कर पाई थी । मामले के विशिष्ट तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा दर्शाई गई नजीरें इस मामले को लागू नहीं होती हैं । इन परिस्थितियों में न्यायालय को इस याचिका में कोई बल प्रतीत नहीं होता है, इसलिए यह खारिज की जाती है । (पैरा 7, 9, 10 और 11)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2007]	(2007) एस. सी. सी. 123 : **शिव दास** बनाम **भारत संघ और अन्य सेना** ;	5
[2002]	2002 की एल. पी. ए. ओ. डब्ल्यू. सं. 189, तारीख 25 अप्रैल, 2008 को विनिश्चित : **भारत संघ** बनाम **तारा सिंह** ।	5

आरम्भिक (सिविल रिट) अधिकारिता : 2005 की एस. डब्ल्यू. पी. सं. 894.

जम्मू-कश्मीर संविधान, 1957 के अनुच्छेद 103 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से	श्रीमती एस. कौर, अधिवक्ता
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री के. के. पंगोतरा और राजीव भूषण शर्मा

न्यायमूर्ति हकीम इम्तियाज़ हुसैन – याची का पति एस. रूप सिंह तारीख 10 मई, 1948 को जम्मू-कश्मीर के मिलिटिया में सिपाही के रूप

में नियुक्त किया गया था । उसे लगभग 15 वर्षों की सेवा पूरी करने के पश्चात् तारीख 25 जुलाई, 1963 को चिकित्सीय आधार पर सेवा से निकाल दिया गया था क्योंकि युद्ध के समय वह जख्मी हो गया था । तारीख 18 फरवरी, 2003 को उसकी मृत्यु हो गई है । उसकी मृत्यु के पश्चात् याची ने यह याचिका फाइल करके उसे पेंशन संबंधी प्रसुविधाएं दिए जाने की मांग की है । उसने यह कहा है कि सेना से भारमुक्त किए जाने के समय उसका पति पेंशन का हकदार था किन्तु उसे उसका प्रदाय नहीं किया गया । अतः वह यह प्रार्थना करती है कि उसे रूप सिंह की विधवा होने के नाते, उसके पति को देय सभी पेंशन संबंधी लाभ दिए जाएं । उसने इससे पूर्व भी प्रत्यर्थी को आवेदन देकर अपने पक्ष में पेंशन दिए जाने का आग्रह किया था किन्तु प्रत्यर्थियों द्वारा उसकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी गई थी । उसने निम्नलिखित अनुतोषों की मांग की है :–

"(i) प्रत्यर्थी सं. 5 भारसाधक अधिकारी अभिलेख, जम्मू-कश्मीर, एल. I, अभिलेख अधिकारी के तारीख 20 अप्रैल, 2005 के आदेश सं. 9120070/केस/एन. ई.-कोर्ड जिसके द्वारा याची को पेंशन संबंधी लाभ देना नामंजूर कर दिया गया है, को अभिखंडित करते हुए उत्प्रेषण रिट जारी की जाए; और

(ii) प्रत्यर्थियों को यह निदेश जारी किया जाए कि वे याची के पति को जम्मू-कश्मीर मिलिटिया (जिसे अब 'जाकली' कहा जाता है) से बाहर जाने की तारीख से निःशक्तता पेंशन मंजूर की जाए और याची की पेंशन नियत करके भूतलक्षी प्रभाव से पेंशन संबंधी बकाया राशि का भुगतान कराने हेतु परमादेश रिट जारी की जाए; और

(iii) प्रत्यर्थियों को यह निदेश जारी किया जाए कि वे याची को पेंशन संबंधी लाभ, जिनमें पेंशन की बकाया, सामूहिक बीमा निधि और उपदान की राशि, 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ब्याज सहित, याची के पति को चिकित्सीय आधार पर बाहर निकाले जाने की तारीख से दिए जाने के लिए परमादेश रिट जारी की जाए; और

(iv) परमादेश रिट जारी करते हुए तारीख 20 अप्रैल, 2005 के आदेश सं. 9120070/केस/एन.ई.-कोर्ड को अधिकारातीत, अवैध, असंवैधानिक और विधिविरुद्ध घोषित किया जाए ।"

2. प्रत्यर्थियों ने अपने उत्तर में यह कहा कि उनके अभिलेख के अनुसार याची के पति को सेना आदेश 380/60 और सेना नियम 13-

II(iii) के उपबंधों के अधीन चिकित्सीय दृष्टि से अयोग्य होने के कारण सेवा से निर्मोचित किया गया था और उसकी निःशक्तता सैन्य सेवा के कारण नहीं हुई थी । उन्होंने इस बात से इनकार किया कि याची के पति को सेवा से निकाल दिया गया था ।

3. सुना । मैंने मामले पर विचार किया ।

4. मैंने प्रस्तुत याचिका में उठाए गए आधारों पर विचार किया ।

5. याची की काउंसेल ने जोर देकर यह दलील दी कि याची उन पेंशन संबंधी लाभों की हकदार है जो उसके पति अर्थात् रूप सिंह को देय थे । उन्होंने यह निवेदन किया कि मृतक ने 15 वर्षों से अधिक सेना में सेवा की थी और उन्हें फौजी कार्रवाइयों के दौरान जख्मी होने के कारण चिकित्सीय आधार पर निर्मुक्त कर दिया गया था । विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलीलों के समर्थन में **शिव दास** बनाम **भारत संघ और अन्य सेना**[1] और **भारत संघ** बनाम **तारा सिंह**[2] वाले मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिए गए निर्णयों का अवलंब लिया है ।

6. मैंने याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया किन्तु प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए मैं नहीं समझता कि याची किसी अनुतोष की हकदार है ।

7. यह स्वीकार किया गया है कि याची के पति को तारीख 25 जुलाई, 1963 को चिकित्सीय आधार पर अयोग्य होने के कारण सेवा से उन्मोचित कर दिया गया था । प्रत्यर्थियों द्वारा यह कहा गया था कि उन्मोचित किए जाने के समय उसे सभी वैध बकाया राशि, अर्थात् सेवा उपदान के रु. 615/- तथा सेवांत जमा राशि के 516/- रुपए का संदाय कर दिया गया था । प्रत्यर्थियों ने यह भी कहा है कि याची के पति ने जम्मू-कश्मीर राज्य सरकार से भी अनुतोष प्राप्त किया है तथा पति की मृत्यु के पश्चात् याची भी उपरोक्त अनुतोष प्राप्त कर रही है ।

8. इस संबंध में प्रत्यर्थियों ने निम्नलिखित कहा है :–

> "1. स्वर्गीय सिपाही सं. 9120070 तारीख 10 मई, 1948 को पूर्वतर जम्मू-कश्मीर मिलिटिया की सूची पर नहीं था और उसे चिकित्सीय आधार पर अयोग्य होने के कारण तारीख 25 जुलाई,

---

[1] (2007) एस. सी. सी. 123.

[2] 2002 की एल. पी. ए. ओ. डब्ल्यू. सं. 189, तारीख 25 अप्रैल, 2008 को विनिश्चित.

1963 को, सेना आदेश 380/60 और सेना नियम 13-II(iii) के उपबंधों के अधीन सेवा से उन्मोचित किया गया था । सेवा से उन्मोचित किए जाने के पश्चात् तारीख 18 फरवरी, 2003 को इस व्यक्ति का निधन हुआ था । तारीख 13 अप्रैल, 1964 को जम्मू-कश्मीर मिलिटिया का पुनर्गठन किए जाने से पहले यह पूर्णतः अस्थायी था और यह जम्मू-कश्मीर राज्य का गैर-पेंशन योग्य बल था । इस बल के कर्मियों को पेंशन संबंधी लाभ, भारत सरकार, गृह मंत्रालय के तारीख 16 मई, 1964 के पत्र सं. एफ-6/19-63 के (जिसकी प्रति उपाबंध I के रूप में संलग्न की गई है) में विनिर्दिष्ट निबंधनों और शर्तों के अनुरूप स्थायी बल के रूप में पुनर्गठन के पश्चात् प्राप्त हुए थे । चूंकि याची के पति ने पूर्वतर जम्मू-कश्मीर मिलिटिया में सेवा की थी और वह तारीख 1 अप्रैल, 1996 को पुनर्गठन के पूर्व सेवा से उन्मोचित कर दिया गया था, इसलिए वह नियमों के अधीन किसी भी पेंशन का हकदार नहीं था । इसीलिए, उसे पेंशन का संदाय नहीं किया गया था । तथापि, उसे सभी वैध रूप से देय राशि जैसे कि रु. 615/- सेवा उपदान और रु. 516.67/- सेवांत लाभ के रूप में संदत्त कर दिए गए थे । तदुपरांत, ऐसे पूर्वतर जम्मू-कश्मीर मिलिटिया कार्मिकों को जिन्होंने 15 वर्ष या उससे अधिक की अर्हक सेवा पुनर्गठन से पूर्व पूरी की हो, तारीख 1 अक्तूबर, 1985 से रु. 100/- प्रतिमास का वित्तीय अनुतोष, जिसे तारीख 25 अगस्त, 1995 से बढ़ाकर रु. 500/- कर दिया गया था, संदत्त किया गया था । अब तारीख 1 अप्रैल, 2002 से अनुतोष के रूप में दी जाने वाली इस राशि को पुनरीक्षित करके रु. 750/- प्रतिमास कर दिया गया है । इसके अतिरिक्त जम्मू-कश्मीर मिलिटिया के उन कर्मियों के लिए, जिन्होंने 15 वर्ष की सेवा पूर्ण की है तथा जिन्हें पुनर्गठित जम्मू-कश्मीर मिलिटिया में आमेलित किए जाने योग्य नहीं समझा गया था, जम्मू-कश्मीर राज्य सरकार की ओर से प्रत्येक पूर्ण वर्ष के लिए रु. 50/- प्रतिमास की दर से न्यूनतम रु. 250/- और अधिकतम रु. 500/- की दर से अनुतोष मंजूर किया गया था । याची का पति जम्मू-कश्मीर राज्य सरकार की ओर से यह अनुतोष प्राप्त कर रहा था और पति की मृत्यु के पश्चात् याची भी यह अनुतोष प्राप्त कर रही है । याची के पति को चिकित्सीय आधार पर अयोग्य होने के कारण उन्मोचित किया गया था और पेंशन मंजूर करने वाले

प्राधिकारी, अर्थात् महालेखाकार, जम्मू और कश्मीर ने कोई भी पेंशन उसके पक्ष में मंजूर नहीं की थी । जम्मू-कश्मीर मिलिटिया तारीख 1 अप्रैल, 1964 को अपने पुनर्गठन से पूर्व तक पूर्णतः अस्थाई गैर पेंशन योग्य बल था । अतः याची का पति पेंशन नियमों के अधीन किसी भी पेंशन का हकदार नहीं था ।"

9. याची द्वारा इन तथ्यों का प्रत्याख्यान (इनकार) नहीं किया गया था । याची के पति को तारीख 25 जुलाई, 1963 को सेवा से उन्मोचित किया गया था तथा उसकी मृत्यु तारीख 18 फरवरी, 2003 को हुई थी । इस अवधि के दौरान उसे सेवा से उन्मोचित किए जाते समय उसने प्रत्यर्थियों द्वारा दी गई धनराशि को स्वीकार किया और अपने जीवनकाल में प्रत्यर्थियों से किसी भी पेंशन का दावा नहीं किया । लगभग 40 वर्षों के अन्तराल के पश्चात् याची द्वारा मृतक सिपाही की पेंशन का दावा प्रस्तुत किया गया है, जिसका दावा मृतक सिपाही ने अपने जीवनकाल में कभी भी नहीं किया था । चूंकि याची ने यह दावा अपने पति रूप सिंह की ओर से प्रस्तुत किया है और उसके पति ने अपने जीवनकाल में कभी भी पेंशन का दावा नहीं किया था इसलिए मेरा यह मत है कि अब याची इस प्रकार का कोई दावा करने से निवारित हो गई है, विशेषकर क्योंकि 40 वर्षों से भी अधिक का विलम्ब होने पर भी याची अपनी व्यथा वर्णित नहीं कर पाई थी ।

10. मामले के विशिष्ट तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा दर्शाई गई नजीरें इस मामले को लागू नहीं होती हैं ।

11. इन परिस्थितियों में मुझे इस याचिका में कोई बल प्रतीत नहीं होता है, इसलिए यह खारिज की जाती है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

भ./मह.

संधूर सिंह

बनाम

जम्मू-कश्मीर विशेष अधिकरण और अन्य

तारीख 29 जुलाई, 2010

न्यायमूर्ति मंसूर अहमद मीर

जम्मू-कश्मीर भूमि सुधार अधिनियम, 1976 (1976 का 17) – धारा 4 और 7(2)(ङ) और 8 – कृषि भूमि किराए पर देना – भूमि का 1971 से पूर्व विक्रय – पुनर्ग्रहण का अधिकार – जहां किसी स्वामी द्वारा अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात् भूमि का विक्रय कर दिया गया हो वहां ऐसा स्वामी धारा 7(2)(ङ) के निबंधनों के अधीन भूमि का कब्जा पुनः प्राप्त नहीं कर सकता ।

याची ने इस रिट याचिका के माध्यम से प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा तारीख 5 फरवरी, 2008 को पारित उस आदेश को आक्षेपित किया है, जिसके द्वारा रिट याची द्वारा फाइल की गई पुनरीक्षण याचिका सं. एस. टी. जे. 302/05, रिट याचिका में उल्लिखित आधारों पर खारिज कर दी गई थी । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रश्न यह उठता है कि क्या याची इस तथ्य के कारण निरर्हित हो गया है कि उसने भूमि विक्रीत कर दी थी जिसके बारे में तारीख 30 सितम्बर, 2005 के आदेश में वर्णित किया गया है, जिसके द्वारा याची द्वारा फाइल की गई अपील को संयुक्त भूमि आयुक्त ने खारिज कर दिया था और उसके पश्चात् याची द्वारा फाइल की गई पुनरीक्षण याचिका भी खारिज कर दी गई थी । उपबंध पर विचार करने पर यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि यदि भूमि का स्वामी, जो 1971 के पश्चात् स्वयं उस पर कृषि कर रहा था, भूमि का विक्रय कर देता है तो वह उसे पुनः प्राप्त नहीं कर सकता । तहसीलदार और संयुक्त भूमि आयुक्त-अपील न्यायालय ने जांच करने और मामले के तथ्यों पर विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि रिट याचिकाकर्ता ने अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् भूमि का विक्रय किया है और इसलिए अधिनियम की धारा 7(2)(ङ) के आज्ञापक निबंधनों के अधीन पुनः प्राप्त करने का हकदार नहीं है । न्यायालय उक्त निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता जब तक कि वे अनुचित और अवैध न हों या बिना अधिकारिता के पारित न किए गए हों या जांच किसी साक्ष्य पर आधारित न हो या विधि के आधारभूत सिद्धांतों

के विरुद्ध न हों । तहसीलदार, अपील न्यायालय और पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेशों को देखने पर यह प्रतीत होता है कि कोई भी इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि याची ने 1971 के पश्चात् भूमि का विक्रय किया था । अन्यथा भी यह प्रतीत होता है कि राजस्व प्राधिकारियों अर्थात् तहसीलदार, अपील न्यायालय और पुनरीक्षण न्यायालय ने कोई अवैधता नहीं की है और उन्हें अंतर्वलित मुद्दों को अवधारित करने की अधिकारिता है । अतः रिट याचिका ग्रहण किए जाने योग्य है । (पैरा 21, 22, 25 और 27)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2010]	ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 199 : **हरियाणा राज्य और अन्य** बनाम **मनोज कुमार** ;	28
[2000]	ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 3494 : **उड़ीसा राज्य** बनाम **एस. मोहन्ती और अन्य** ;	28
[1989]	ए. आई. आर. 1989 एस. सी. 159 : **जुगल किशोर** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य** ;	26
[1985]	1985 के. एल. जे. 36 : **गुलाम अहमद देव** बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य** ;	30
[1983]	ए. आई. आर. 1983 एस. सी. 920 : **प्रेम नाथ रैना और अन्य** बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य** ;	29
[1973]	ए. आई. आर. 1973 जे. के. 74 : **गनपत राय और एक अन्य** बनाम **अबनाश चन्द्र और एक अन्य** ।	18

आरम्भिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2008 की ओ. डब्ल्यू. पी. अपील सं. 540.

जम्मू-कश्मीर संविधान, 1957 के अनुच्छेद 103 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री पी. एन. रैना

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री ए. एच. काजी, सहायक महाधिवक्ता, डी. आर. खजूरिया (प्रत्यर्थी सं. 2-5 की ओर से)

न्यायमूर्ति मंसूर अहमद मीर – याची ने इस रिट याचिका के माध्यम से प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा तारीख 5 फरवरी, 2008 को पारित उस आदेश को आक्षेपित किया है, जिसके द्वारा रिट याची द्वारा फाइल की गई पुनरीक्षण याचिका सं. एस. टी. जे. 302/05, रिट याचिका में उल्लिखित आधारों पर खारिज कर दी गई थी ।

2. यह प्रतीत होता है कि पक्षकार 1981 से ही विचाराधीन अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं और यह इस न्यायालय के समक्ष मुकदमेबाजी का तीसरा दौर है । यह उपयुक्त होगा कि यहां मामले का संक्षिप्ततः उल्लेख किया जाए, जिसके कारण रिट याचिका प्रस्तुत की गई है ।

3. टाप शेरखानियां, जम्मू में खसरा सं. 5 के अन्तर्गत आने वाली 19 कनाल 9 मरला भूमि किराएदार के रूप में घसीटू राम के कब्जे में थी और उसकी मृत्यु के पश्चात्, वह भूमि घसीटू के विधिक उत्तराधिकारियों-प्रतिनिधियों के कब्जे में चली गई थी । जम्मू-कश्मीर भूमि सुधार अधिनियम (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 4 के अधीन प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 के पक्ष में दाखिल-खारिज सं. 2819 द्वारा आदेश पारित किया गया था और वे भावी स्वामियों के रूप में घोषित किए गए थे । तद्नुसार प्रत्यर्थियों ने उद्ग्रहण फीस जमा की थी और अधिनियम की धारा 8 के अधीन उनके हक में नामांतरण पारित किया गया था । याची-पूर्व भूस्वामी ने अधिनियम के उपबंधों के निबंधनों में विहित प्ररूप में तहसीलदार के समक्ष भूमि पुनः प्राप्त करने के लिए आवेदन फाइल किया था, जो कि तहसीलदार द्वारा अपने तारीख 10 अप्रैल, 1981 के आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था तथा तद्नुसार नामांतरण प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 के पक्ष में पारित किया गया था ।

4. इससे व्यथित होकर याची ने इसे अपील प्राधिकारी के समक्ष प्रश्नगत किया था, तथापि, अपील खारिज कर दी गई थी । याची ने उक्त आदेशों को पुनरीक्षण याचिका में प्रश्नगत किया था, जिसे स्वीकार कर लिया गया था और अपील न्यायालय के साथ-साथ तहसीलदार का आदेश भी निरस्त कर दिया गया था ।

5. प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 ने व्यथित होकर इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका फाइल की थी जो स्वीकार कर ली गई थी और अधिकरण का आदेश अभिखंडित कर दिया गया था तथा तहसीलदार को नए सिरे से कार्यवाही करने का निदेश दिया गया था ।

6. तहसीलदार ने पुनर्ग्रहण स्वीकार किया था, जिसे प्रत्यर्थी सं. 5 ने संयुक्त भूमि सुधार आयुक्त के समक्ष आक्षेपित किया जिसे स्वीकृत कर

लिया गया तथा यह मामला तहसीलदार को पुनः नए आदेश पारित करने के लिए लौटा दिया गया ।

7. रिट-याची ने उपरोक्त आदेश को प्रत्यर्थी सं. 1 के समक्ष पुनरीक्षण याचिका के माध्यम से प्रश्नगत किया था, जिसे तारीख 28 मार्च, 2001 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था । यह उपयुक्त होगा कि तारीख 28 मार्च, 2001 के निर्णय के प्रवर्तनीय भाग को यहां दोहराया जाए :–

> "तथापि, विद्वान् तहसीलदार के आदेश से यह प्रतीत होता है कि जब तारीख 23 मई, 1998 को मौके पर प्रत्यर्थियों में से कोई उपस्थित नहीं था तो याची का साक्ष्य एकपक्षीय रूप से अभिलिखित किया गया था तथापि, विद्वान् तहसीलदार ने प्रत्यर्थियों को अपने दावे प्रस्तुत करने का एक और अवसर देने के लिए मामले को तारीख 26 मई, 1998 तक के लिए स्थगित कर दिया था । ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थियों को यह अवसर उन्हें कोई नोटिस दिए बिना दिया गया था और इसलिए यह निरर्थक था क्योंकि उन्हें इस अवसर की जानकारी नहीं थी । यदि विद्वान् तहसीलदार की राय में प्रत्यर्थियों को एक और अवसर दिए जाने की आवश्यकता थी तब उन्हें उसे नए नोटिस जारी करने चाहिए थे । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए प्रत्यर्थियों के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उन्हें याची के साक्ष्य का जवाब देने के लिए उचित अवसर दिया गया था । अतः अपील न्यायालय ने उचित रूप से मामले को प्रतिप्रेषित किया है ।"

8. पक्षकारों ने इसे स्वीकार किया और तहसीलदार के समक्ष की गई जांच में भाग लिया ।

9. संक्षिप्त संविवाद, जिसका तहसीलदार द्वारा अवधारण किया गया था, यह था कि क्या याची भूमि का कब्जा वापस लेने या न लेने के लिए हकदार था ? तहसीलदार ने जांच की थी और इस आधार पर याची का पुनर्ग्रहण आवेदन अस्वीकार कर दिया कि रिट याची तारीख 29 दिसम्बर, 2001 के आदेश द्वारा अधिनियम की धारा 7(2)(ङ) के आज्ञापक निबंधनों में निरर्हित था ।

10. याची ने व्यथित होने के कारण उक्त आदेश को अपील के द्वारा संयुक्त भूमि आयुक्त के समक्ष आक्षेपित किया था, जिसे तारीख 30 सितम्बर, 2005 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था । याची ने प्रत्यर्थी सं. 1 की अधिकारिता का अवलंब लिया और तहसीलदार तथा संयुक्त भूमि सुधार आयुक्त के आदेशों को प्रश्नगत किया जिसे तारीख 5 फरवरी, 2008 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था । इस आदेश को

इस रिट याचिका में आक्षेपित किया गया है ।

11. प्रत्यर्थी सं. 2 से प्रत्यर्थी सं. 5 ने आक्षेप में लिए गए आधारों पर याचिका का प्रतिरोध किया ।

12. प्रत्यर्थियों ने यह दलील दी है कि रिट याचिकाकर्ता ने यह स्वीकार किया है कि प्रत्यर्थी सं. 2 से प्रत्यर्थी सं. 5 उसके किराएदार हैं और इसलिए वह अपने इस अभिवाक् से मुकर नहीं सकता कि प्रश्नगत भूमि बंधक के अधीन है । आगे यह दलील दी गई है कि अधिनियम की धारा 7(2)(ङ) के आज्ञापक निबंधनों के अधीन याचिकाकर्ता इस तथ्य के आधार पर निरर्हित हो गया है कि उसने अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् भूमि विक्रीत कर दी थी ।

13. अभिलेख और साथ ही साथ पक्षकारों की दलीलों पर विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि याची ने अधिनियम की धारा 4 के अधीन पारित नामांतरण सं. 2819 को प्रश्नगत किया था, जिसके द्वारा श्री घसीटू को भावी-स्वामी घोषित किया गया था और रिट याचिकाकर्ता को पूर्व-भूस्वामी घोषित किया गया था और अपील खारिज किए जाने के पश्चात् याची ने उक्त निष्कर्ष को आक्षेपित नहीं किया था जिसके कारण नामांतरण अंतिम हो गया था । प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 ने पुनर्ग्रहण आवेदन खारिज किए जाने के पश्चात् लेवी जमा कर दी थी और अधिनियम की धारा 8 के अधीन उनके पक्ष में नामांतरण सं. 2837 पारित हो गया था ।

14. रिट याचिकाकर्ता ने पुनर्ग्रहण प्ररूप फाइल किया था जिसमें यह अभिलिखित किया गया था कि प्रत्यर्थी किराएदार है ।

15. प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 ने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका सं. 577/87 फाइल की थी और याची-प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 ने रिट याचिका के पैरा 2 में विशेष रूप से यह उल्लेख किया था कि वे प्रत्यर्थी सं. 3 के, जो कि हमारे समक्ष याचिकाकर्ता है, किराएदार है । यह उचित होगा कि यहां उक्त रिट याचिका का पैरा सं. 2 उद्धृत किया जाए :–

> "2. यह भूमि जिसका माप 19 कनाल 8 मरला है और जिसका खसरा सं. 58 और 58 मिनजुमला है, ग्राम टाप शेरखानिया में स्थित है और प्रत्यर्थी सं. 3 और श्री हरि सिंह के स्वामित्वाधीन है । यह भूमि पिछले दो दशकों से अधिक समय से याची की संरक्षित किराएदारी में है ।"

16. हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 3 ने उक्त रिट याचिका में आक्षेप फाइल किया और पैरा सं. 2 का खंडन नहीं किया है । यह उचित होगा

कि यहां उत्तर का पैरा 2 उल्लिखित किया जाए :–

"2. पैरा सं. 2 का खंडन नहीं किया जाता है ।"

17. ऊपर वर्णित परिस्थितियों में, रिट याचिकाकर्ता ने यह स्वीकार किया है कि घसीटू किराएदार था और उसके पश्चात् उसके विधिक प्रतिनिधि किराएदार हैं । इस प्रकार याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई यह दलील कि भूमि बंधकाधीन थी, वस्तुतः उस कथन से मुकरना है जो पहली बार किया गया है और इसे इससे पहले मुकदमे के दो स्तरों पर कभी नहीं उठाया गया था ।

18. यहां यह वर्णित करना उचित होगा कि राजस्व अभिलेख में यह अभिलिखित है कि घसीटू और उसके उपरान्त उसके विधिक प्रतिनिधि एकमुश्त रूप में किराए का भुगतान कर रहे हैं (गैर मारूसी-लगान नकदी-बिलमुक्ता रुपए पचास सल्तमन) । जम्मू-कश्मीर अभिधृति अधिनियम, 1970 (जिसे संक्षेप में 'अभिधृति अधिनियम' कहा गया है) के उपबंध और स्थायी आदेश सं. 22 विभिन्न प्रकार के किराएदारों का उपबंध करते हैं । कोई किराएदार किराए के रूप में आधी उपज का भुगतान कर सकता है, कुछ किराएदार किराए के चौथाई भाग का संदाय कर सकते हैं और कुछ एकमुश्त रूप में भुगतान कर सकते हैं । खासला कालम में, नकदी हासी परता देह के रूप में प्रविष्टि अभिलिखित है जिसका अर्थ यह है कि वे व्यक्ति, जिनके पक्ष में प्रविष्टि अभिलिखित की गई है, किराएदार हैं किन्तु जिन्हें किराया अर्थात् उपज का अंश, देने की आवश्यकता नहीं है । इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने **गनपत राय और एक अन्य** बनाम **अबनाश चन्द्र और एक अन्य**[1] वाले मामले में यही सिद्धांत निर्धारित किया था ।

19. यहां यह उपयुक्त होगा कि स्थायी आदेश 22 के नियम 9(क) का संबंधित भाग भी उद्धृत किया जाए :–

> "(क) **नकद रूप में किराया** – यह उपदर्शित करना कि क्या किराया प्रति कनाल या प्रति एकड़ की दर से एक-मुश्त है या वार्षिक किरायों या चेन द्वारा लिए गए माप पर आधारित है, जहां किराए की दर भू-राजस्व और उपकरों से कम या समान है तो छूट के आधार दिए जाएंगे; कृषि के लिए अस्थायी अंतरण के मामलों में यह स्पष्ट किया जाएगा कि प्रत्येक संबंधित खसरा सं. के भू-राजस्व का कौन भुगतान करेगा और क्या किराया फसल उगाने के लिए कब्जे में दिए गए उस क्षेत्र के मृदा की किस्म पर निर्धारित है .....।"

---

[1] ए. आई. आर. 1973 जे. के. 74.

20. इस प्रकार, जैसा कि रिट के याचिकाकर्ता ने स्वीकार किया है और जैसा कि किराएदारी अधिनियम के उपबंधों के निबंधनों के साथ पठित स्थायी आदेश 22 (पूर्वोक्त) के अनुसार, घसीटू किराए का एक-मुश्त नकद भुगतान कर रहा था और उसकी मृत्यु के उपरान्त प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 जो कि इस प्रकार किराएदार हो गए थे, उसके विधिक उत्तराधिकारियों के रूप में एक-मुश्त नकद किराए का भुगतान कर रहे थे और यह नहीं कहा जा सकता कि भूमि बंधक अधीन थी ।

21. अब प्रश्न यह उठता है कि क्या याची इस तथ्य के कारण निरर्हित हो गया है कि उसने भूमि विक्रीत कर दी थी जिसके बारे में तारीख 30 सितम्बर, 2005 के आदेश में वर्णित किया गया है, जिसके द्वारा याची द्वारा फाइल की गई अपील को संयुक्त भूमि आयुक्त ने खारिज कर दिया था और उसके पश्चात् याची द्वारा फाइल की गई पुनरीक्षण याचिका भी खारिज कर दी गई थी । यहां यह उपयुक्त होगा कि अधिनियम की धारा 7(2)(ङ) को उद्धृत किया जाए :–

> "7(2)(ङ) – ऐसा व्यक्ति, जिसने सितम्बर, 1971 के प्रथम दिन को या उसके पश्चात् विक्रय या उपहार या वसीयत द्वारा भूमि का अंतरण किया है, भूमि के पुनर्ग्रहण करने के लिए अर्ह नहीं होगा यदि इस प्रकार अन्तरित भूमि पर वह अंतरण से पूर्व स्वयं कृषि कर रहा था ।"

22. उपबंध पर विचार करने पर यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि यदि भूमि का स्वामी, जो 1971 के पश्चात् स्वयं उस पर कृषि कर रहा था, भूमि का विक्रय कर देता है तो वह उसे पुनः प्राप्त नहीं कर सकता । तहसीलदार और संयुक्त भूमि आयुक्त-अपील न्यायालय ने जांच करने और मामले के तथ्यों पर विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि रिट याचिकाकर्ता ने अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् भूमि का विक्रय किया है और इसलिए अधिनियम की धारा 7(2)(ङ) के आज्ञापक निबंधनों के अधीन पुनः प्राप्त करने का हकदार नहीं है । यहां यह उपयुक्त होगा कि तारीख 30 सितम्बर, 2005 को अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का प्रवर्तनीय भाग उद्धृत किया जाए :–

> "मैंने इस मामले में फाइल पर उपलब्ध अभिलेख के साथ-साथ विभिन्न न्यायालयों को निदेशों और आदेशों का परिशीलन किया और पक्षकारों के काउंसेलों द्वारा दी गई लिखित दलीलों का भी परीक्षण किया और इस मामले के अंतर्वलित विधि के बिन्दु पर भी पूर्ण ध्यान दिया । अपीलार्थी के काउंसेल द्वारा दी गई यह दलील कि तारीख 29

दिसम्बर, 2001 को जम्मू के तहसीलदार और उप कमिश्नर, परगवाल तहसील अखनूर में एक आतंकवादी आक्रमण के शिकार हो गए थे और इसलिए उन्होंने कोई जांच नहीं की या तारीख 29 दिसम्बर, 2001 को कोई आदेश पारित नहीं किया, असत्य और निराधार है । राजस्व के अभिलेख की प्रतियों अर्थात् "फर्द पड़ताल" रोजनामचा वाम्पात श्री आर. सी. मिस्त्री, तहसीलदार जम्मू के राजस्व अभिलेख की डायरी कारगुजारी और अपीलार्थी पर समन की सम्यक्तः तामील से यह बात साबित होती है । इसके अतिरिक्त, परगवाल तहसील अखनूर में पड़ता है और तहसीलदार जम्मू को इसमें कुछ नहीं करना था । यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी और उसके काउंसेल तारीख 30 दिसम्बर, 2001 को दैनिक एक्सलसीयर में प्रकाशित समाचार की अप्रमाणिकता और गलत उद्धरण के कारण भ्रमित हुए थे । इसलिए अपुष्ट तथ्यों पर आधारित दलील देकर न्यायालय को भ्रमित किया है । अन्यथा भी यह न्यायालय ए. आई. आर. 1969 एस. सी. 1201 डी (120), ए. आई. आर. 1988 एस. सी. पृष्ठ 1247 (1290) और ए. सी. जे. 1978 पृष्ठ 26 वाले मामलों से सहमत हैं और किसी समाचार मद में वर्णित अपुष्ट तथ्यों की न्यायिक अवेक्षा नहीं कर सकता । द्वितीयतः अपीलार्थी ने खसरा सं. 923, 73, 921 की भूमि का विक्रय करना स्वीकार किया है किन्तु यह कहा है कि विक्रय की गई भूमि बंजर थी । किन्तु खसरा गिरदावरी, जमाबंदी के अभिलेख और नामांतरण का परिशीलन करने पर यह प्रतीत होता है कि इस प्रकार विक्रय की गई भूमि की मृदा की किस्म खरीफ 1971 और उसके पश्चात् भी "वरयाल अव्वल" और "नहरी" थी ।

खरीफ 1971 से अपीलार्थी स्वयं इस भूमि पर खेती कर रहा था और इसके पश्चात् हलका पटवारी ने इस भूमि की मृदा खसरा सं. 923 में "बंजर" में परिवर्तित कर दी थी, जिससे कि अपीलार्थी विक्रय-विलेख को रजिस्ट्रीकृत करवाने में सक्षम हो सके किन्तु पटवारी मृदा को परिवर्तित करने के लिए सक्षम नहीं था । इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी ने दूसरे खसरा संख्याओं की भूमि का विक्रय कर दिया था जो कि "बंजर" नहीं थीं, इसलिए अपीलार्थी ने धारा 7(ङ) में उल्लिखित उपबंधों का निश्चित रूप से उल्लंघन किया था जो कि उसे किराएदार से पुनः भूमि प्राप्त करने के लिए हकदार नहीं बनाता ..... ।"

23. अतः अपील न्यायालय ने तहसीलदार द्वारा निकाले गए निष्कर्षों की पुष्टि की । अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि याची अधिनियम

की धारा 7(2)(ङ) के निबंधनों में निरर्हित हो गया है । यहां आदेश का संबंधित भाग उद्धृत करना उपयुक्त होगा :–

> "..... इसलिए पूर्व स्वामी को अपनी भूमि पुनः प्राप्त करने से निरर्हित करने के लिए उसे यह सिद्ध करना चाहिए कि – (i) कोई भूमि अंतरित की गई थी ; (ii) इस प्रकार किया गया अंतरण विक्रय, दान या वसीयत के रूप में किया जाना चाहिए ; इस प्रकार किया गया अंतरण सितम्बर, 1971 के प्रथम दिन या उसके पश्चात् उपदर्शित होना चाहिए और (i) ऐसी भूमि अंतरण किए जाने से पूर्व वह उस पर स्वयं खेती करता हो । अतः यह पूर्णतया स्पष्ट है कि ये प्रतिबंध तब लागू नहीं होंगे जब विक्रीत की गई भूमि पर वह स्वयं खेती नहीं कर रहा हो, यह भूमि सितम्बर, 1971 के प्रथम दिन के पूर्व विक्रीत की गई हो और ऐसी भूमि विक्रय, दान या वसीयत के सिवाय किसी अन्य रूप में अंतरित की गई हो । यह प्रतिबंध उस भूमि को भी लागू नहीं होगा जो कि उसके स्वामित्व में हो किन्तु उस पर वह स्वयं खेती नहीं कर रहा हो । मामले की इस स्पष्ट विधिक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए याची संधूर सिंह द्वारा खसरा सं. 923 (1 कनाल/वरयाल अव्वल) और खसरा सं. 37 मिनजुमला (1 कनाल-12मरलास/नहरी) क्रमशः पंडित राधा कृष्ण और सुरिन्दर कुमार जलाली को विक्रीत की गई थी । खसरा गिरदवारी का अभिलेख यह दर्शाता है कि संधूर का इस भूमि पर कब्जा था और वह स्वयं उस पर खेती करता था । अभिलेख के इस दस्तावेजी साक्ष्य का खंडन नहीं किया गया है जिसे सत्य उपधारित किया जा सकता है । तारीख 29 दिसम्बर, 2011 को जम्मू के तहसीलदार द्वारा निकाला गया निष्कर्ष और जिसकी तारीख 30 दिसम्बर, 2005 को संयुक्त कृषि आयुक्त द्वारा पुष्टि की गई है, अनपवादिक है और इस अधिकरण को इसमें हस्तक्षेप करने के लिए कोई विधिक त्रुटि प्रतीत नहीं होती है ।"

24. प्रथम न्यायालय, अपीली न्यायालय और पुनरीक्षण न्यायालय अर्थात् राजस्व प्राधिकारियों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि याची ने भूमि का विक्रय कर दिया था और वह निरर्हित हो गया था ।

25. न्यायालय उक्त निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता जब तक कि वे अनुचित और अवैध न हों या बिना अधिकारिता के पारित न किए गए हों या जांच किसी साक्ष्य पर आधारित न हो या विधि के आधारभूत

सिद्धांतों के विरुद्ध न हों ।

26. उच्चतम न्यायालय ने **जुगल किशोर** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया था कि केवल राजस्व प्राधिकारी ही यह निर्धारित कर सकते हैं कि भूमि के स्वामी द्वारा किया गया भूमि का विक्रय या अंतरण उचित था या किराएदारी अधिनियम को विफल करने के लिए अधिकतम सीमा की उपेक्षा करके किया गया हो । यह हितकर होगा कि यहां उक्त निर्णय के पैरा 8 को उद्धृत किया जाए :–

> "8. अतः याची की ओर से यह दलील दी गई है कि अधिकतम सीमा प्राधिकारी द्वारा किराएदारी का प्रश्न अधिकारिता के बिना अवधारित किया गया था । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि इस मामले के तथ्यों के आधार पर यह सही नहीं था । सीलिंग प्राधिकारी को याची की धृति का अवधारण करना चाहिए था । उदाहरण के रूप में जहां भूमि-धृतिधारक स्वामी द्वारा अंतरण किराएदारी सृजित करते हुए किया गया हो चाहे ऐसा अंतरण सद्भाविक हो या वह सीलिंग अधिनियम के उपबंधों को विफल करने के आशय से किया गया हो वहां ऐसे प्रश्न का विनिश्चय समान रूप से सीलिंग प्राधिकारियों द्वारा किया जाएगा या सीलिंग अधिनियम के अधीन क्रियान्वित किया जाएगा । इस न्यायनिर्णयन में विनिश्चय के लिए मुद्दा यह होगा कि क्या याची के किराएदार द्वारा किराएदारी अधिकार प्राप्त कर लिया गया था । किन्तु यहां सीलिंग प्राधिकारियों द्वारा यह न्यायनिर्णयन करना था कि क्या किराएदार को अंतरण से यह उपधारित किया जा सकता है कि ऐसा अंतरण सद्भाविक था या उसका आशय सीलिंग अधिनियम के उपबंधों को विफल करना था । उस पश्चात्वर्ती प्रश्न पर केवल सीलिंग प्राधिकारियों द्वारा उचित कार्यवाहियों में विचार किया जा सकता है । जब तक कि विभिन्न सामाजिक-आर्थिक योजनाओं के क्रियान्वयन के आशय से अधिनियम को ऐसी अनुपूरक रीति से नहीं पढ़ा जाता है, इस क्षेत्र में विभिन्न अधिनियमों के प्रवर्तन से विरोधाभास उत्पन्न हो सकता है और असंभव हो सकता है, अतः यह आवश्यक है कि इस प्रकार के उपबंधों को परिभाषित करने में सार्थक रुख अपनाया जाए और न्यायालय के समक्ष प्रश्नगत न्यायनिर्णयन में विशिष्ट अधिनियम के मुख्य उद्देश्य का अवधारण किया जाए ।"

---

[1] ए. आई. आर. 1989 एस. सी. 159.

27. तहसीलदार, अपील न्यायालय और पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेशों को देखने पर यह प्रतीत होता है कि कोई भी इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि याची ने 1971 के पश्चात् भूमि का विक्रय किया था । अन्यथा भी यह प्रतीत होता है कि राजस्व प्राधिकारियों अर्थात् तहसीलदार, अपील न्यायालय और पुनरीक्षण न्यायालय ने कोई अवैधता नहीं की है और उन्हें अंतर्वलित मुद्दों को अवधारित करने की अधिकारिता है । अतः रिट याचिका ग्रहण किए जाने योग्य है ।

28. उच्चतम न्यायालय ने **उड़ीसा राज्य** बनाम **एस. मोहन्ती और अन्य**[1] और **हरियाणा राज्य और अन्य** बनाम **मनोज कुमार**[2] वाले मामलों में यही सिद्धांत निर्धारित किया है ।

29. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अधिनियम की धारा 7(2)(ङ) संविधान के उपबंधों का अतिलंघन करती है । इस दलील में कोई बल नहीं है और उच्चतम न्यायालय द्वारा पहले ही **प्रेम नाथ रैना और अन्य** बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य**[3] वाले मामले में इसका उत्तर दिया चुका है ।

30. इस न्यायालय ने **गुलाम अहमद देव** बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य**[4] वाले मामले में भी यही सिद्धांत अधिकथित किया है ।

31. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए मेरा यह मत है कि रिट याचिका ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है और खारिज किए जाने योग्य है । तद्नुसार, इसे सी. एम. पी. याचिकाओं के साथ खारिज किया जाता है । अन्तरिम आदेश, यदि कोई हो, रद्द किया जाता है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

भ./मह.

---

[1] ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 3494.

[2] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 199.

[3] ए. आई. आर. 1983 एस. सी. 920.

[4] 1985 के. एल. जे. 36.

किरन देवी (श्रीमती) और अन्य

बनाम

श्री पी. एन. हांडा और अन्य

तारीख 30 अगस्त, 2011

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र शर्मा

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 163-क – मोटर दुर्घटना दावा – लोक अदालत में पक्षकारों के बीच समझौते पर चर्चा – लोक अदालत में मामले का निपटान न होना – अधिकरण द्वारा मृतक की आयु और आय को दृष्टिगत करते हुए तथा लोक अदालत में पक्षकारों के बीच अनंतिम समझौते को दृष्टिगत करते हुए अधिनिर्णय दिया जाना – चुनौती – ऐसे अधिनिर्णय को पूर्णतया अनुचित या अनुपयुक्त नहीं कहा जा सकता – अतः अधिनिर्णय की पुष्टि की जा सकती है ।

यह अपील मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण मामला सं. 1541/1997 में, मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण न्यायाधीश, जयपुर द्वारा तारीख 25 अक्तूबर, 2002 को पारित उस अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा दावेदारों की दावा याचिका को मंजूर किया गया है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – दावेदारों द्वारा फाइल की गई अपील में यह अभिकथित किया गया है कि ए. डब्ल्यू. 2 कैलाश के कथन के अनुसार मृतक, राम रतन पाण्डेय प्रिंटिंग आर्ट्स में 4,000/- रुपए प्रतिमास कमाता था । राम रतन पाण्डेय ने भी अपने कथन में यह अभिकथित किया है कि मृतक वेतन प्रमाणपत्र प्रदर्श-10 के अनुसार वेतन पा रहा था । यह अभिकथित किया गया है कि मृतक की आय के संबंध में प्रत्यर्थियों ने किसी प्रकार का खण्डन नहीं किया है । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने आयु और मृतक द्वारा अर्जित आय के बारे में ठीक प्रकार से विचार नहीं किया है तथा केवल आयु के और उसकी आय के अनुमान के आधार पर 2,65,000/- रुपए की धनराशि अधिनिर्णीत की है । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने सहजीविका और भविष्य में आय की हानि के लिए भी कोई धनराशि अधिनिर्णीत नहीं की है । ब्याज भी 9 प्रतिशत वार्षिक दर से अधिनिर्णीत

किया गया है । न्यायालय के विचार से राजू **उर्फ** लवेश की मृत्यु हो जाने के कारण 2,65,000/- रुपए का अधिनिर्णय उचित और उपयुक्त है क्योंकि यह मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण के समक्ष लोक अदालत द्वारा दिए गए सुझाव के अनुसार था । चूंकि लोक अदालत में विनिश्चय के लिए समझौता नहीं हो सका, इसलिए मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने मृतक की आयु और आय के आधार पर लगभग 2,65,000/- रुपए की राशि अधिनिर्णीत की है । चूंकि यह मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा अधिनिर्णीत एक मुश्त धनराशि थी, इसलिए किसी अन्य मद के लिए और कोई धनराशि अधिनर्णीत करने का कोई सवाल ही नहीं है । यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि अपील के स्तर पर भी मामले को लोक अदालत में ग्रहण किया गया था परन्तु काउंसेल समझौते के लिए सहमत नहीं हुए थे और इस प्रकार मामले का निपटान नहीं हो सका । मेरे विचार से मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा मृतक की आयु और उसकी आय को देखते हुए किया गया निर्धारण अनुपयुक्त नहीं कहा जा सकता है । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा निकाले गए निष्कर्ष की अभिपुष्टि की जाती है और इस अपील में किसी हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं है । यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि जब एक बार लोक अदालत में मामले का निपटान हो गया था परन्तु क्रियान्वित नहीं हो सका, तब कम से कम ऐसे मामले में, अपील फाइल नहीं करनी चाहिए थी । दावेदारों द्वारा फाइल की गई अपील बलरहित होने के कारण खारिज की जाती है । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण मामला सं. 1541/1997 में तारीख 25 अक्तूबर, 2002 को मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय की अभिपुष्टि की जाती है । (पैरा 4, 6 और 7)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2003 की एस. बी. सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 424.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से कोई नहीं

बीमा कंपनी की ओर से श्री विनोद त्यागी

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र शर्मा – यह अपील मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण मामला सं. 1541/1997 में, मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण न्यायाधीश, जयपुर द्वारा तारीख 25 अक्तूबर, 2002 को पारित उस अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा दावेदारों की दावा

याचिका को मंजूर किया गया है और उन्हें तारीख 4 अगस्त, 1997 को दोपहर लगभग 12.45 बजे उस समय अभिकथित सड़क दुर्घटना में राजू **उर्फ** लवेश की मृत्यु हो जाने के कारण 2,65,000/- रुपए की धनराशि के रूप में प्रतिकर अधिनिर्णीत किया गया है जब वह सांगानेर से दुर्गापुरा मोड़ की तरफ आ रहा था और अचानक सामने से एक ट्रक रजिस्ट्रेशन सं. एच आर 47-5167 आया और मृतक की साइकिल को टक्कर मार दी ।

2. तथ्य आक्षेपित निर्णय में निर्दिष्ट किए गए हैं और इसलिए मैं उसे यहां नहीं दोहरा रहा हूं सिवाय जहां कहीं वह आवश्यक हो ।

3. आज अपीलार्थी दावेदारों की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ और इसलिए मामला बीमा कंपनी की ओर से सुना गया । यह उल्लेख किया जा सकता है कि पूर्ववर्ती मामले को विभिन्न तारीखों अर्थात् तारीख 3 फरवरी, 2007, 24 फरवरी, 2007 और 7 अप्रैल, 2007 को लोक अदालत के समक्ष पेश किया गया था किन्तु मामले में कोई समझौता नहीं हो सका ।

4. दावेदारों द्वारा फाइल की गई अपील में यह अभिकथित किया गया है कि ए. डब्ल्यू. 2 कैलाश के कथन के अनुसार मृतक, राम रतन पाण्डेय प्रिंटिंग आर्ट्स में 4,000/- रुपए प्रतिमास कमाता था । राम रतन पाण्डेय ने भी अपने कथन में यह अभिकथित किया है कि मृतक वेतन प्रमाणपत्र प्रदर्श-10 के अनुसार वेतन पा रहा था । यह अभिकथित किया गया है कि मृतक की आय के संबंध में प्रत्यर्थियों ने किसी प्रकार का खण्डन नहीं किया है । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने आयु और मृतक द्वारा अर्जित आय के बारे में ठीक प्रकार से विचार नहीं किया है तथा केवल आयु के और उसकी आय के अनुमान के आधार पर 2,65,000/- रुपए की धनराशि अधिनिर्णीत की है । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने सहजीविका और भविष्य में आय की हानि के लिए भी कोई धनराशि अधिनिर्णीत नहीं की है । ब्याज भी 9 प्रतिशत वार्षिक दर से अधिनिर्णीत किया गया है ।

5. बीमा कंपनी के विद्वान् काउंसेल श्री विनोद त्यागी ने यह दलील दी है कि मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने 2,65,000/- रुपए की राशि अधिनिर्णीत की है जैसाकि पक्षकारों द्वारा लोक अदालत में चर्चा की गई थी ।

6. मैनें अपील के ज्ञापन में अभिकथित अपीलार्थियों की ओर से दी गई दलीलों और बीमा कंपनी की ओर से दी गई दलीलों पर विचार किया है । मेरे विचार से राजू **उर्फ** लवेश की मृत्यु हो जाने के कारण

2,65,000/- रुपए का अधिनिर्णय उचित और उपयुक्त है क्योंकि यह मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण के समक्ष लोक अदालत द्वारा दिए गए सुझाव के अनुसार था । चूंकि लोक अदालत में विनिश्चय के लिए समझौता नहीं हो सका, इसलिए मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने मृतक की आयु और आय के आधार पर लगभग 2,65,000/- रुपए की राशि अधिनिर्णीत की है । चूंकि यह मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा अधिनिर्णीत एक मुश्त धनराशि थी, इसलिए किसी अन्य मद के लिए और कोई धनराशि अधिनर्णीत करने का कोई सवाल ही नहीं है । यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि अपील के स्तर पर भी मामले को लोक अदालत में ग्रहण किया गया था परन्तु काउंसेल समझौते के लिए सहमत नहीं हुए थे और इस प्रकार मामले का निपटान नहीं हो सका । मेरे विचार से मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा मृतक की आयु और उसकी आय को देखते हुए किया गया निर्धारण अनुपयुक्त नहीं कहा जा सकता है । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा निकाले गए निष्कर्ष की अभिपुष्टि की जाती है और इस अपील में किसी हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं है । यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि जब एक बार लोक अदालत में मामले का निपटान हो गया था परन्तु क्रियान्वित नहीं हो सका, तब कम से कम ऐसे मामले में, अपील फाइल नहीं करनी चाहिए थी ।

7. दावेदारों द्वारा फाइल की गई अपील बलरहित होने के कारण खारिज की जाती है । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण मामला सं. 1541/1997 में तारीख 25 अक्तूबर, 2002 को मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय की अभिपुष्टि की जाती है । दावेदारों को यह धनराशि ले लेनी चाहिए और यदि धनराशि दावेदारों में वितरित नहीं की गई है तो उसे मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय के अनुसार तुरन्त संवितरित किया जाए । पक्षकारों को अपने-अपने खर्चे स्वयं वहन करने का निदेश दिया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मही./मह.

कमांडेंट, सातवीं बटालियन आर. ए. सी., भरतपुर और अन्य

बनाम

श्री गोविन्द सहाय व्यास और अन्य

तथा

श्री गोविन्द सहाय व्यास और अन्य

बनाम

श्री भीम सिंह और अन्य

तारीख 13 अक्तूबर, 2011

न्यायमूर्ति मोहम्मद रफीक़

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 163-क – मोटर दुर्घटना – मृतक द्वारा जिप्सी में यात्रा – ट्रक से टक्कर – मृत्यु – प्रतिकर के लिए दावा – दुर्घटना में अन्तर्वलित यान का पता न लगना – इस बात से कोई अन्तर नहीं पड़ता कि टक्कर मारने वाले यान का पता नहीं लगाया जा सका – उस जिप्सी का स्वामी, बीमा कंपनी और चालक प्रतिकर के लिए दायी समझे जाएंगे – अतः जिप्सी के स्वामी, बीमा कंपनी और चालक से प्रतिकर वसूल किया जा सकता है ।

ये दोनों अपीलें मोटर दुर्घटना दावा मामला सं. 145/1996 में विद्वान् मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, जयपुर (राजस्थान राज्य सहकारी अधिकरण, जयपुर) द्वारा तारीख 12 सितम्बर, 2001 को पारित अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की गई हैं । गैर-दावेदारों अर्थात् (1) कमांडेन्ट, 7वीं बटालियन, आर. ए. सी., भरतपुर और (2) गृह आयुक्त, गृह मंत्रालय, सचिवालय भवन, जयपुर ने अधिनिर्णय के अभिखण्डन के लिए और दावा याचिका को खारिज करने के लिए अपील सं. 34/2002 फाइल की है और यह भी अनुरोध किया है कि उन्हें मृतक विजय कुमार शर्मा की मृत्यु के कारण विद्वान् अधिकरण द्वारा अधिनिर्णीत प्रतिकर के संदाय से मुक्त किया जाए, जो सहायक कमांडेन्ट के रूप में उनके साथ नियोजित था और जिसकी स्वयं की जिप्सी में यात्रा करते हुए दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी, जिसे उनका चालक भीम सिंह चला रहा था; और दावेदारों ने प्रतिकर की रकम बढ़ाने के लिए अपील सं. 961/2002 फाइल की है । विद्वान् अधिकरण ने

आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन, दुर्घटना में विजय कुमार की मृत्यु के कारण दावेदारों के पक्ष में प्रतिकर के रूप में 6,20,000/- रुपए की धनराशि का अधिनिर्णय पारित किया है । अपीलें तद्नुसार निपटाते हुए,

अभिनिर्धारित – केवल इस कारण कि भारी यान अर्थात् ट्रक पकड़ा नहीं जा सका और पुलिस ने मामले में अंतिम रिपोर्ट पेश की है, दावेदारों को प्रतिकर से वंचित करने के लिए एक कारण नहीं हो सकता । मृतक गैर-दावेदारों की जिप्सी में यात्रा कर रहा था, जिसे उनका कर्मचारी चालक भीम सिंह चला रहा था । विद्वान् अधिकरण ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि दावेदार सभी गैर-दावेदारों अर्थात् अपीलार्थी, स्वामी और यान का बीमा करने वाली कंपनी से संयुक्त रूप से और पृथक्तः प्रतिकर प्राप्त करने के लिए हकदार हैं । वर्तमान मामले में, मृतक गैर-दावेदारों की जिप्सी में यात्रा कर रहा था जिसे उनका चालक उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक तरीके से चला रहा था और इसलिए वे इस दुर्घटना के लिए प्रतिनिधिक रूप से उत्तरदायी हैं । मृतक विजय कुमार शर्मा उस जिप्सी में था और उसकी दुर्घटना के कारण मृत्यु हुई थी, जो भीम सिंह के उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक यान चलाने के कारण हुई थी । जहां तक मृतक की आय का संबंध है, उस सुसंगत समय पर मृतक का वेतन 6,252/- रुपए था और उसका 30 प्रतिशत उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए सरला वर्मा के मामले में प्रतिपादित सिद्धांत के आधार पर भविष्य की संभावनाओं को जोड़ा जाएगा और जिसके द्वारा मासिक आय 8,258/- रुपए होगी । तथापि, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि इसमें छह आश्रित थे अर्थात् पिता, माता, विधवा, दो पुत्र और एक पुत्री आश्रित थे, इसलिए केवल 1/5वां भाग मृतक के स्वयं के खर्चों के लिए कम किया जाना चाहिए और उसका 1/5 भाग 1,623/- रुपए बनता है तथा 1/5 भाग कम करने के पश्चात् निर्भरता धनराशि 13 से गुणक लागू करके 6,505/- रुपए बनती है, प्रतिकर की मात्रा बढ़कर 6505x12x13 = 10,14,780/- रुपए हो जाती है । (पैरा 4)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2009]	(2009) 6 एस. सी. सी. 121 : **सरला वर्मा (श्रीमती) और अन्य** बनाम **दिल्ली परिवहन निगम और अन्य** ।	3,4

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2002 की एस. बी. सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 34 और 961.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 73 के अधीन अपीलें ।

गैर-दावेदारों की ओर से सर्वश्री गणेश परिहार और एस. सी. पुरोहित

दावेदारों की ओर से श्री विनोद त्यागी

न्यायमूर्ति मोहम्मद रफीक़ – ये दोनों अपीलें मोटर दुर्घटना दावा मामला सं. 145/1996 में विद्वान् मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, जयपुर (राजस्थान राज्य सहकारी अधिकरण, जयपुर) द्वारा तारीख 12 सितम्बर, 2001 को पारित अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की गई हैं । गैर-दावेदारों अर्थात् (1) कमांडेन्ट, 7वीं बटालियन, आर. ए. सी., भरतपुर और (2) गृह आयुक्त, गृह मंत्रालय, सचिवालय भवन, जयपुर ने अधिनिर्णय के अभिखण्डन के लिए और दावा याचिका को खारिज करने के लिए अपील सं. 34/2002 फाइल की है यह भी अनुरोध किया है कि उन्हें मृतक विजय कुमार शर्मा की मृत्यु के कारण विद्वान् अधिकरण द्वारा अधिनिर्णीत प्रतिकर से संदाय से मुक्त किया जाए, जो सहायक कमांडेन्ट के रूप में उनके साथ नियोजित था और जिसकी स्वयं की जिप्सी में यात्रा करते हुए दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी, जिसे उनका चालक भीम सिंह चला रहा था; और दावेदारों ने प्रतिकर की रकम बढ़ाने के लिए अपील सं. 961/2002 फाइल की है । विद्वान् अधिकरण ने आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन, दुर्घटना में विजय कुमार की मृत्यु के कारण दावेदारों के पक्ष में प्रतिकर के रूप में 6,20,000/- रुपए की धनराशि का अधिनिर्णय पारित किया है ।

2. अपील सं. 34/2002 में गैर-दावेदारों-अपीलार्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान् अपर सरकारी काउंसेल ने यह दलील दी कि किसी विशिष्ट साक्ष्य के बिना, विद्वान् अधिकरण ने मृतक की आय 7,500/- रुपए प्रतिमास निर्धारित की है जब कि उसका मासिक वेतन 6,252/- रुपए था । अधिकरण ने मृतक के खर्चों के लिए 1,200/- रुपए की धनराशि की कटौती की है और शेष 6,300/- रुपए की धनराशि मासिक निर्भरता के लिए नियत की है । मृतक, ज्येष्ठ पुलिस अधिकारी होने के नाते, अपना बेहतर रख-रखाव रखता था और किसी भी स्थिति में, उसके स्वयं के खर्चों के लिए 1,200/- रुपए से अधिक माना जाना चाहिए था और उसके स्वयं के खर्चों के लिए उसके वेतन का 1/3 भाग माना जाना चाहिए था । विद्वान्

काउंसेल ने यह भी दलील दी कि 9,68,538/- रुपए विभिन्न शीर्षों के अधीन मृतक के आश्रितों को पहले ही संदत्त किए जा चुके हैं । यह दलील दी गई है कि विद्वान् अधिकरण ने, प्रतिकर का अधिनिर्णय करते समय मृतक के आश्रितों को पहले ही संदत्त धनराशि को विचार में लेने में असफल रहा है । यह परिस्थितियां प्रमाण देती हैं, का मामला है । विद्वान् अधिकरण ने इस अभिकथन पर ठीक प्रकार से विचार नहीं किया जो अत्यंत सुसंगत है । इस बारे में कोई भी साक्ष्य नहीं है, जिससे यह सिद्ध हो कि भीम सिंह के उतावलेपन और उपेक्षा के कारण दुर्घटना हुई थी । विद्वान् काउंसेल ने मात्र संकल्पना के आधार पर भीम सिंह की उपेक्षा अभिनिर्धारित की है और गैर-दावेदारों को प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायी बनाया है, जबकि दुर्घटना में अंतर्वलित ट्रक का पता नहीं लगाया जा सका । पुलिस ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में नकारात्मक अंतिम रिपोर्ट दी है । इसलिए यह अनुरोध किया गया है कि अधिनिर्णय को अपास्त किया जाए और अपीलार्थियों को प्रतिकर का संदाय करने के दायित्व से मुक्त किया जाए ।

3. अपील सं. 961/2002 में दावेदार-अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री विनोद त्यागी ने यह दलील दी है कि अधिकरण ने मासिक वेतन 6,252/- रुपए माना है और भविष्य की संभावनाओं पर विचार करने पर, मृतक की मासिक आय 7,500/- रुपए निर्धारित की है । तथापि, विद्वान् अधिकरण ने मात्र 8 का गुणक लागू करके विधि की भूल की है, क्योंकि अधिनियम से संलग्न अनुसूची-II के अनुसार, मृतक का आयु समूह 45 और 50 के बीच होने के कारण 13 का गुणक लागू किया जाना चाहिए था । यह दलील दी गई है कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **सरला वर्मा (श्रीमती) और अन्य** बनाम **दिल्ली परिवहन निगम और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय के अनुसार इस आयु समूह के लिए 13 का गुणक लागू किया जाना चाहिए । विद्वान् अधिकरण ने आश्रितों की संख्या के आधार पर 14 यूनिट माना है और मृतक के स्वयं के खर्चों के लिए दो यूनिटों के लिए 1,200/- रुपए कम किए हैं, और उस आधार पर निर्भरता 6,300/- रुपए प्रतिमास निर्धारित की है । विद्वान् काउंसेल ने उच्चतम न्यायालय द्वारा **सरला वर्मा (श्रीमती) और अन्य** बनाम **दिल्ली परिवहन निगम और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए, यह दलील दी है कि चूंकि मृतक वेतनभोगी व्यक्ति था तथा इसलिए उसकी

---

[1] (2009) 6 एस. सी. सी. 121.

निश्चित आय थी और इसलिए उसकी आयु को ध्यान में रखते हुए, भविष्य की संभावनाओं के लिए 30 प्रतिशित जोड़ा जाना चाहिए और इस प्रकार 30 प्रतिशत जोड़ने के पश्चात्, मृतक की आय 8,128/- रुपए मानी जानी चाहिए और उस आधार पर प्रतिकर का आकलन किया जाना चाहिए । अनुरोध किया गया है कि तद्नुसार दावेदारों द्वारा फाइल की गई अपील को मंजूर करते हुए प्रतिकर में वृद्धि की जाए ।

4. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और अभिलेख पर पेश की गई सामग्री का परिशीलन करने के पश्चात्, मेरा यह मत है कि केवल इस कारण कि भारी यान अर्थात् क्योंकि भारी यान अर्थात् ट्रक पकड़ा नहीं जा सका और पुलिस ने मामले में अंतिम रिपोर्ट पेश की है, दावेदारों को प्रतिकर से वंचित करने के लिए एक कारण नहीं हो सकता । मृतक गैर-दावेदारों की जिप्सी में यात्रा कर रहा था, जिसे उनका कर्मचारी चालक भीम सिंह चला रहा था । विद्वान् अधिकरण ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि दावेदार सभी गैर-दावेदारों अर्थात् अपीलार्थी, स्वामी और यान का बीमा करने वाली कंपनी से संयुक्त रूप से और पृथक्तः प्रतिकर प्राप्त करने के लिए हकदार हैं । वर्तमान मामले में, मृतक गैर-दावेदारों की जिप्सी में यात्रा कर रहा था जिसे उनका चालक उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक तरीके से चला रहा था और इसलिए वे इस दुर्घटना के लिए प्रतिनिधिक रूप से उत्तरदायी हैं । मृतक विजय कुमार शर्मा उस जिप्सी में था और उसकी दुर्घटना के कारण मृत्यु हुई थी, जो भीम सिंह के उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक यान चलाने के कारण हुई थी । जहां तक मृतक की आय का संबंध है, उस सुसंगत समय पर मृतक का वेतन 6,252/- रुपए था और उसका 30 प्रतिशत उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए **सरला वर्मा** (उपरोक्त) के मामले में प्रतिपादित सिद्धांत के आधार पर भविष्य की संभावनाओं को जोड़ा जाएगा और जिसके द्वारा मासिक आय 8,258/- रुपए होगी । तथापि, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि इसमें छह आश्रित थे अर्थात् पिता, माता, विधवा, दो पुत्र और एक पुत्री आश्रित थे, इसलिए केवल 1/5वां भाग मृतक के स्वयं के खर्चों के लिए कम किया जाना चाहिए और उसका 1/5 भाग 1,623/- रुपए बनता है तथा 1/5 भाग कम करने के पश्चात् निर्भरता धनराशि 13 से गुणक लागू करके 6,505/- रुपए बनती है, प्रतिकर की मात्रा बढ़कर 6,505x12x13 = 10,14,780/- रुपए हो जाती है ।

5. परिणामतः आक्षेपित आदेश को उपांतरित किया जाता है । 6,04,800/- रुपए की प्रतिकर की धनराशि को बढ़ाकर 10,14,780/- रुपए किया जाता है । इस वृद्धि की गई धनराशि पर आवेदन करने की तारीख से वसूली की तारीख तक 7.5 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज भी देना होगा । गैर-आर्थिक शीर्षों के अधीन 15,000/- रुपए के अधिनिर्णय को कायम रखा जाता है ।

6. तद्नुसार दोनों अपीलें निपटाई जाती हैं ।

अपीलें तद्नुसार निपटाई गईं ।

मही./मह.

(2013) 1 सि. नि. प. 99 **राजस्थान**

शर्मिला कुमारी (सुश्री)

बनाम

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर और एक अन्य

तारीख 7 दिसम्बर, 2011

न्यायमूर्ति आलोक शर्मा

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 – अध्यापक पात्रता परीक्षा – याची द्वारा उत्तर पुस्तिका में गलत श्रृंखला का उल्लेख करने के कारण परिणाम प्रभावित होना – याचिका – जहां गलती अनभिज्ञता के कारण की गई हो वहां गलती को सुधारने पर पुनः मूल्यांकन का आदेश देना उचित होगा ।

याची आर. टी. ई. टी.- 2011 परीक्षा में बैठी थी । याची ने उत्तर पुस्तिका पर गलती से गलत प्रश्न पुस्तिका की श्रृंखला का उल्लेख किया जिससे याची के अंक प्रभावित हुए । याची ने ठीक न करने से व्यथित होकर वर्तमान रिट याचिका फाइल की । रिट याचिका को तद्नुसार निपटाते हुए,

अभिनिर्धारित – याची और प्रत्यर्थियों के काउंसेलों को सुनने और अभिलेख पर पेश किए गए तथ्यों का परिशीलन करने से यह स्पष्ट होता है कि याची की शिकायत का कारण उसकी स्वयं की गलती है । तथापि, यह तथ्य रह जाता है कि गलती का अब पता चला है और यदि आर. टी. ई. टी.-2011 परीक्षा के पेपर स्तर-II में याची की कार्य कुशलता के बारे में

उसको आबंटित प्रश्न पुस्तिका की संख्या के अनुसार मूल्यांकन किया जाता है तो याची स्तर-II में 150 अंकों में से 99 अंक प्राप्त करेगी और उत्तीर्ण घोषित की जाएगी जो उसे शिक्षा का अधिकार अधिनियम के अंतर्गत आने वाले विद्यालय में अध्यापक के रूप में भर्ती के लिए पात्र बनाएगा । अतः मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर को याची की प्रश्न पुस्तिका संख्या 2429563 के अनुसार श्रृंखला 'ग' के अधीन विचार करते हुए उसकी उत्तर पुस्तिका के संदर्भ में आर. टी. ई. टी.-2011 परीक्षा के पेपर स्तर-II में याची की कार्यकुशलता का मूल्यांकन करने का निदेश देता है । प्रत्यर्थियों के काउंसेल ने इस बात से इनकार नहीं किया है कि याची की प्रश्न पुस्तिका संख्या 2429563 थी और इसलिए याची द्वारा श्रृंखला 'ग' के संदर्भ में सही प्रविष्टि करने की दशा में उसी प्रकार मूल्यांकन किया जाना चाहिए । प्रत्यर्थी-बोर्ड को इस आदेश की प्रमाणित प्रति की प्राप्ति से तीन सप्ताह की अवधि के भीतर आवश्यक मूल्यांकन करने का निदेश दिया जाता है । (पैरा 8 और 9)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2011 की एस. बी. सिविल रिट याचिका सं. 15922.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री हनुमान चौधरी

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री वी. के. गुप्ता

न्यायमूर्ति आलोक शर्मा – याची अपेक्षित अर्हता रखते हुए, तारीख 31 जुलाई, 2011 को दोनों पेपर स्तर-I और पेपर स्तर-II में अन्य पिछड़ा वर्ग महिला की श्रेणी में राजस्थान अध्यापक पात्रता परीक्षा-2011 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'आर. टी. ई. टी.-2011' कहा गया है) में बैठी थी । परीक्षा का परिणाम तारीख 28 अगस्त, 2011 को घोषित हुआ था और याची ने आर. टी. ई. टी.-2011 की परीक्षा में अन्य पिछड़ा वर्ग महिला की श्रेणी में पेपर स्तर-I में 150 में से 80 अंक और पेपर स्तर-II में 150 में से 34 अंक प्राप्त किए थे जबकि अन्य पिछड़ा वर्ग में न्यूनतम उतीर्ण घोषित किए जाने और पात्रता प्रमाण पत्र की हक़दारी के लिए 67.50 अंक अपेक्षित थे ।

2. याची ने अपने आर. टी. ई. टी. के परिणाम विशिष्ट रूप से पेपर स्तर-II की परीक्षा से असंतुष्ट होकर ओ. एम. आर. शीट के साथ उत्तर पुस्तिका और पेपर स्तर-I और पेपर स्तर-II की अंक-तालिका प्राप्त करने

के लिए सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के अधीन एक आवेदन फाइल किया था । याची को तारीख 8 अक्तूबर, 2011 को पेपर स्तर-I और पेपर स्तर-II की ओ. एम. आर. शीट के साथ उत्तर पुस्तिका की प्रति दी गई थी और याची द्वारा प्रस्तुत पेपर स्तर-II की उत्तर कुंजी भी सचिव और संयोजक, राजस्थान अध्यापक पात्रता परीक्षा, 2011 की वेबसाइट/ऑनलाइन सेवा द्वारा प्राप्त कर ली गई थी । याची के अनुसार, प्रत्यर्थियों की वेबसाइट से प्राप्त किए गए उक्त पेपर की उत्तर पुस्तिका से आर. टी. ई. टी.-2011 के पेपर स्तर-II में अपने कार्य की तुलना करने से यह प्रतीत होता है कि याची ने वस्तुतः 99 अंक न कि पेपर स्तर-II में 150 में से 34 अंक प्राप्त किए थे और इस प्रकार याची को आर. टी. ई. टी.-2011 परीक्षा में पेपर स्तर-II में गलत अंक दिए गए थे ।

3. याची ने माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान को समावेदन किया था जिसके द्वारा परीक्षा में उसके मूल्यांकन में हुई गलती उपदर्शित की गई थी और परिणामस्वरूप उसने उपांतरित परिणाम के साथ स्तर-II में अपने पेपर के मूल्यांकन की मांग की थी । मूल्यांकन के अनुरोध को इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए इनकार किया गया कि आर. टी. ई. टी.-2011 के अधीन अंकों के मूल्यांकन का कोई उपबंध नहीं था ।

4. इसलिए वर्तमान रिट याचिका फाइल की गई है ।

5. प्रत्यर्थी-माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर ने यह दलील दी है कि आर. टी. ई. टी.-2011 की परीक्षा में सात लाख से ज्यादा छात्रों ने भाग लिया था जो परीक्षा वैकल्पिक प्रश्न और उत्तर के आधार पर थी और जिसके सही उत्तर के सामने ओ. एम. आर. शीट पर काले बाल पेन से ओ. एम. आर. शीट में उत्तर भरा जाना था और इन ओ. एम. आर. शीटों को कंप्यूटर द्वारा स्कैन किया गया था । यह दलील दी गई है कि ओ. एम. आर. शीटों पर उत्तरों के लिए तथा आवश्यक ब्यौरों के लिए यथा अनुक्रमांक संख्या, प्रश्न पुस्तिका संख्या, भाषा इत्यादि का उल्लेख करने के लिए स्थान होता है । यह दलील दी गई है कि माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर का गुप्त विभाग, प्रश्न पुस्तक संख्या उल्लिखित करने के संबंध में मापदंड नियत करता है और ओ. एम. आर. शीट पर उत्तर का प्रश्न पुस्तिका संख्या पर कोड विनिश्चय के आधार पर मूल्यांकन किया जाता है । उपरोक्त मापदंड नियत किया गया था और प्रश्न पुस्तिका संख्या को चार भागों में विभाजित किया गया था तथा परिणामस्वरूप संख्या 0, 1, 2 और 3 थीं और कोड क्रमशः घ, क, ख, ग था ।

6. यह दलील दी गई है कि वर्तमान याचिका में, इस आधार पर चुनौती दी गई है कि आर. टी. ई. टी.-2011 परीक्षा (स्तर-II) की पुस्तिका श्रृंखला 'घ' द्वारा याची की उत्तर शीट का मूल्यांकन करते हुए, प्रत्यर्थियों ने मनमाने ढंग से कार्य किया है जबकि वस्तुतः उसकी उत्तर पुस्तिका श्रृंखला 'घ' के बजाय श्रृंखला 'ग' के संदर्भ में सही की जानी चाहिए थी । यह दलील दी गई है कि जब याची को ओ. एम. आर. शीट के साथ उत्तर शीट दी गई थी तब उसने उत्तर शीट और ओ. एम. आर. शीट की सभी प्रविष्टियों को ठीक प्रकार से भरा था । याची ने अपनी प्रश्न पुस्तिका संख्या को 2429563 के स्थान पर गलती से 2429536 के रूप में उल्लेख किया और यह बात स्वयं याची द्वारा फाइल किए उपाबंधों से स्पष्ट होती है । यह दलील दी गई है कि याची द्वारा की गई उपर्युक्त गलती के कारण ओ. एम. आर. शीट कोड/श्रृंखला 'घ' के संदर्भ में जांच की गई न कि कोड/ श्रृंखला 'ग' के संदर्भ में । यह दलील दी गई है कि याची की ओ. एम. आर. शीट की कोड 'ग' के संदर्भ में जांच की जानी चाहिए थी क्योंकि याची ने प्रश्न पुस्तिका संख्या 2429563 में सही उल्लेख किया था । इसलिए प्रत्यर्थियों के काउंसेल ने यह दलील दी है कि आर. टी. ई. टी-2011 परीक्षा में याची के कार्य के मूल्यांकन में हुई गलती स्वयं याची की गलती के कारण हुई थी और जिसके लिए माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता । यह दलील दी गई है कि आर. टी. ई. टी.-2011 परीक्षा के दोनों पेपर अर्थात् स्तर-I और पेपर स्तर-II के मूल्यांकन का संपूर्ण कार्य कंप्यूट्रीकृत है और इसलिए याची की उत्तर पुस्तिका उसकी प्रश्न पुस्तिका के संबंध में उत्तर शीट में उसके द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार सही प्रकार से मूल्यांकन किया गया है । काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि आर. टी. ई. टी.-2011 परीक्षा में मूल्यांकन और पुनः जांच करने का कोई उपबंध नहीं है, पुनः मूल्यांकन नहीं किया गया था । यह भी दलील दी गई है कि आर. टी. ई. टी.-2011 परीक्षा हर हालत में प्रत्येक छह मास में आयोजित की जाती है और याची नए सिरे से भाग ले सकती है ।

7. याची के काउंसेल ने प्रत्युत्तर में यह दलील दी है कि याची द्वारा की गई गलती अनजाने में की गई थी और केवल "अपरिहार्य मानव गलती" थी । यह दलील दी गई है कि याची ग्रामीण पृष्ठभूमि से एक निर्धन कुटुंब से संबंध रखती है और एक गलती के कारण उसकी कार्य क्षमता का फायदा देने से इनकार करना कठोरतापूर्ण और अन्यायपूर्ण

होगा । यह भी दलील दी गई है कि इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि यह गलती अभी प्रकाश में आई है और इससे स्पष्ट होता है कि यदि गलती का सुधार हो जाता है तो याची 150 अंकों में से 99 अंक प्राप्त करेगी और वह उत्तीर्ण घोषित की जाएगी, इसलिए इस न्यायालय को याची को कठिनाई से छुटकारा दिलाने के लिए अपनी असाधारण अधिकारिता का प्रयोग करना चाहिए ।

8. याची और प्रत्यर्थियों के काउंसेलों को सुनने और अभिलेख पर पेश किए गए तथ्यों का परिशीलन करने से यह स्पष्ट होता है कि याची की शिकायत का कारण उसकी स्वयं की गलती है । तथापि, यह तथ्य रह जाता है कि गलती का अब पता चला है और यदि आर. टी. ई. टी.-2011 परीक्षा के पेपर स्तर-II में याची की कार्य कुशलता के बारे में उसको आबंटित प्रश्न पुस्तिका की संख्या के अनुसार मूल्यांकन किया जाता है तो याची स्तर-II में 150 अंकों में से 99 अंक प्राप्त करेगी और उत्तीर्ण घोषित की जाएगी जो उसे शिक्षा का अधिकार अधिनियम के अंतर्गत आने वाले विद्यालय में अध्यापक के रूप में भर्ती के लिए पात्र बनाएगा ।

9. अतः मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, मैं राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर को याची की प्रश्न पुस्तिका संख्या 2429563 के अनुसार श्रृंखला 'ग' के अधीन विचार करते हुए उसकी उत्तर पुस्तिका के संदर्भ में आर. टी. ई. टी.-2011 परीक्षा के पेपर स्तर-II में याची की कार्यकुशलता का मूल्यांकन करने का निदेश देता है । प्रत्यर्थियों के काउंसेल ने इस बात से इनकार नहीं किया है कि याची की प्रश्न पुस्तिका संख्या 2429563 थी और इसलिए याची द्वारा श्रृंखला 'ग' के संदर्भ में सही प्रविष्टि करने की दशा में उसी प्रकार मूल्यांकन किया जाना चाहिए । प्रत्यर्थी-बोर्ड को इस आदेश की प्रमाणित प्रति की प्राप्ति से तीन सप्ताह की अवधि के भीतर आवश्यक मूल्यांकन करने का निदेश दिया जाता है ।

10. चूंकि संपूर्ण मुकदमेदारी याची की स्वयं की लापरवाही और उपेक्षा के कारण हुई है इसलिए इस याचिका के खर्चे के रूप में प्रत्यर्थी-बोर्ड को याची द्वारा 1000/- रुपए खर्चा देने का आदेश किया जाता है ।

रिट याचिका का तद्नुसार निपटारा किया गया ।

मही./मह.

मनीषा और अन्य

बनाम

रूप नारायण जाट और अन्य

तथा

मनीषा और अन्य

बनाम

रूप नारायण जाट और अन्य

तथा

गंगा बिशन गुर्जर और अन्य

बनाम

रूप नारायण जाट और अन्य

तारीख 6 सितम्बर, 2012

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र शर्मा

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 163-क और 173 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – मृतक की नोशनल आय 15,000/- रुपए वार्षिक मानते हुए 15 का गुणक लागू किया जाना – जहां निचले न्यायालय द्वारा विधिक अपेक्षाओं का अनुपालन किया गया हो वहां पारित निर्णय में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है ।

अपीलार्थी-क्लेमेन्ट्स की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 2405/2009, 3856/2009, 2140/2009 एवं आपत्तिकर्ता बीमा कंपनी की ओर से उपरोक्त वर्णित क्रास आब्जेक्शन संख्या 6/2012, 79/2010 एवं 286/2011 मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, जयपुर नगर, जयपुर द्वारा पारित निर्णय दिनांक 6 अक्तूबर, 2008 के विरुद्ध प्रस्तुत किए गए हैं । अपील और प्रति-आपत्तियां खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अपीलार्थी-क्लेमेन्ट्स के विद्वान् अधिवक्ता का तर्क है कि मृतक बुद्धराज दुर्घटना के समय 2 वर्ष की आयु का था, जो क्लेमेन्ट्स का एकमात्र पौत्र था, जिसकी कोई आय नहीं होने से माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनेक निर्णयों में प्रतिपादित सिद्धांत के अनुसार उसकी

नोशनल आय 15,000/- रुपए वार्षिक मानते हुए उस पर 15 का गुणक उपयोग करते हुए क्षतिपूर्ति राशि दिलाई जानी चाहिए । उनका कथन है कि मृतक सुरज्ञान की मृत्यु के समय उसकी उम्र 25 वर्ष थी, वह खेती बाड़ी व दूध बेचने का काम करता था । किन्तु मृतक सुरज्ञान की भी आय का सही रूप से निर्धारण नहीं करते हुए न्यून क्षतिपूर्ति राशि दिलाई गई है । इसी प्रकार मृतका मोत्यादेवी के संबंध में उनका तर्क है कि वह सिलाई-बुनाई का कार्य कर 4,000/- रुपए कमाती थी एवं अपना परिवार का भरणपोषण करती थी किन्तु मृतक सुरज्ञान व मोत्यादेवी की आय का निर्धारण सही रूप से नहीं किया गया है । इस प्रकार अपीलार्थी-क्लेमेन्ट्स को अत्यन्त ही कम क्षतिपूर्ति राशि दिलाई गई है । उनका तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण नहीं कर अपना निर्णय पारित किया है, जो विधिसम्मत नहीं है । उनका कथन है कि आक्षेपित निर्णय को संशोधित करते हुए अपीलार्थीगण को दिलाई गई क्षतिपूर्ति राशि को उपयुक्त सीमा तक बढ़ाया जाए । जबकि आपत्तिकर्ता बीमा कम्पनी के विद्वान् अधिवक्ता का तर्क है कि दुर्घटना में लिप्त वाहन एच टी वी था और चालक के पास सिर्फ एल एम वी व ट्रांसपोर्ट व्हीकल चलाने का लाईसेन्स था । इस प्रकार वाहन को बीमा शर्तों के विपरीत चलाया गया, जिससे बीमा कम्पनी क्षतिपूर्ति राशि की अदायगी के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराई जा सकती । उनका यह भी तर्क है कि दुर्घटना के समय मोटरसाइकिल चालक सुरज्ञान क्षमता से अधिक 4 व्यक्तियों को बिठाकर ले जा रहा था, जिससे मोटरसाइकिल पर उसका नियंत्रण नहीं रहा । उनका यह भी तर्क है कि दुर्घटना के लिए मोटरसाइकिल चालक मृतक सुरज्ञान भी दोषी है । अतः आक्षेपित निर्णय को निरस्त किया जाए । न्यायालय ने उभयपक्ष के विद्वान् अधिवक्तागण के तर्कों पर मनन किया । आक्षेपित निर्णय का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया । मेरे मत में विद्वान् अधिकरण द्वारा पारित निर्णय में हस्तक्षेप किए जाने का कोई आधार नहीं है । विद्वान् अधिकरण ने विधि के आक्षेपित अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण करने के उपरान्त अपना निर्णय पारित करते हुए क्लेमेन्ट्स को उपयुक्त क्षतिपूर्ति राशि दिलाई है । विद्वान् अधिकरण का निर्णय पूर्णतया विधिसम्मत है । अतः अपीलार्थीगण-क्लेमेन्ट्स की ओर से प्रस्तुत उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 2505/2009, 3856/2009 और 2140/2009 एवं आपत्तिकर्ता बीमा कंपनी की ओर से प्रस्तुत उपरोक्त वर्णित क्रास ओब्जेक्शन संख्या 6/2012,

79/2010 एवं 286/2011 निरस्त किए जाते हैं । मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, जयपुर नगर, जयपुर द्वारा पारित निर्णय दिनांक 6 अक्तूबर, 2008 की पुष्टि की जाती है । (पैरा 4, 5, 6 और 7)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2010]	2010 एम. ए. सी. डी. (एस. सी.) 185 : **अरुण कुमार अग्रवाल और अन्य** बनाम **नेशनल इंश्योरेन्स कम्पनी और अन्य ;**	4
[2009]	2009 ए. सी. जी. 1830 : **बाबू सिंह** बनाम **मोहम्मद इरफान और अन्य ;**	4
[2009]	2009 ए. सी. जी. 981 : **नन्हेलाल गोंतिया और अन्य** बनाम **हरीशचन्द और अन्य ;**	4
[2008]	2008 ए. सी. जी. 393 : **देवीसिंह** बनाम **विक्रम सिंह और अन्य ;**	4
[2006]	2006 (2) टी. ए. सी. 126 : **शोभागमल जैन** बनाम **राजस्थान राज्य और अन्य ;**	4
[2003]	2003 ए. सी. जी. 1514 : **शंकर लाल और अन्य** बनाम **राजस्थान स्टेट ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन और अन्य ।**	5

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2009 की एकलपीठ सिविल विविध अपील संख्या 2405, 2140 और 3856 तथा 2012 के क्रास ओब्जेक्शन सं. 6/2012, 79/2010 और 286/2011.

मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, जयपुर द्वारा तारीख 6 अक्तूबर, 2008 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री बी. सी. रावत

आपत्तिकर्ता की ओर से श्री वीरेन्द्र अग्रवाल

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र शर्मा – अपीलार्थी-क्लेमेन्ट्स की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 2405/2009, 3856/2009,

2140/2009 एवं आपत्तिकर्ता बीमा कंपनी की ओर से उपरोक्त वर्णित क्रास आब्जेक्शन संख्या 6/2012, 79/2010 एवं 286/2011 मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, जयपुर नगर, जयपुर द्वारा पारित निर्णय दिनांक 6 अक्तूबर, 2008 के विरुद्ध प्रस्तुत किए गए हैं, जिसके द्वारा अपील संख्या 2405/2009 के अपीलार्थीगण-क्लेमेन्ट्स को 1,00,000/- रुपए, अपील संख्या 3856/2009 के अपीलार्थीगण-क्लेमेन्ट्स को 4,33,000/- रुपए एवं अपील संख्या 2140/2009 के अपीलार्थीगण-क्लेमेन्ट्स को 1,25,000/- रुपए क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने का आदेश दिया गया ।

2. प्रकरण के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं कि दिनांक 17 सितम्बर, 2007 को सुरज्ञान अपनी मोटरसाइकिल पर अपनी पत्नी रामभरोसी, अपने पुत्र बुद्धराज व अपनी मां मोत्यादेवी को बिठाकर किसी संबंधी के यहां मृत्यु में बैठने के लिए जा रहे थे कि करीब प्रातः 7 बजे के लगभग थाना बरौनी के अंतर्गत मोटूका से पहले पहुंचे तो सामने की ओर से एक ट्रक संख्या आर जे 14 1जी-7259 को उसका चालक तेज गति व लापरवाहीपूर्वक चलाते हुए लाया और अपनी सही दिशा में चल रही सुरज्ञान की मोटरसाइकिल के सामने आकर रोंग साइड में घुसकर टक्कर मारी जिसके कारण सुरज्ञान की मृत्यु हो गई, उसकी माता मोत्यादेवी व उसका पुत्र बुद्धराज और उसकी पत्नी रामभरोसी की भी मृत्यु हो गई । यह दुर्घटना सुरज्ञान के पीछे से आ रही मोटरसाइकिल पर उसके भाई एवं गोकुल गुर्जर ने देखी है । दुर्घटना विपक्षी संख्या 1 द्वारा अपने ट्रक को लापरवाहीपूर्वक चलाने के कारण हुई, जिसकी पुलिस थाना बैरानी में एफ. आई. आर. संख्या 267/2007 दर्ज करवाई गई । इस दुर्घटना में सुरज्ञान, रामभरोसी, बुद्धराज व श्रीमती मोत्यादेवी की मृत्यु हो जाने से भिन्न-भिन्न क्लेम याचिकाएं अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत की गईं ।

3. अपीलार्थी-क्लेमेन्ट्स द्वारा प्रस्तुत क्लेम याचिकाओं के नोटिस याचिका के विपक्षीगण को जारी किए गए । विपक्षीगण की ओर से जवाब प्रस्तुत किया गया, जिसमें क्लेम याचिका के तथ्यों से इनकार करते हुए याचिका खारिज किए जाने की प्रार्थना की गई । विद्वान् अधिकरण ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर पांच विवाद्यक विरचित किए । तत्पश्चात् साक्ष्य लेखबद्ध किए जाने एवं बहस सुनने के उपरान्त विद्वान् मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, जयपुर नगर, जयपुर ने अपने निर्णय दिनांक 6 अक्तूबर, 2008 के द्वारा अपील संख्या 2405/2009 के अपीलार्थी-क्लेमेन्ट्स को 1,00,000/- रुपए, अपील संख्या 3856/2009 के अपीलार्थी-क्लेमेन्ट्स को 4,33,000/- रुपए एवं अपील संख्या 2140/2009 के अपीलार्थी-

क्लेमेन्ट्स को 1,25,000/- रुपए क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने का आदेश दिया, जिससे व्यथित होकर अपीलार्थीगण की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई है एवं बीमा कम्पनी की ओर से वर्णित क्रास ओब्जेक्शन पेश किए गए हैं । चूंकि उपरोक्त वर्णित समस्त अपीलों एवं क्रास ओब्जेक्शन के अन्तर्गत अधिकरण के एक ही निर्णय को चुनौती दी गई है, जिससे इनका निस्तारण इस एक ही निर्णय के द्वारा किया जा रहा है ।

4. अपीलार्थी-क्लेमेन्ट्स के विद्वान् अधिवक्ता का तर्क है कि मृतक बुद्धराज दुर्घटना के समय 2 वर्ष की आयु का था, जो क्लेमेन्ट्स का एकमात्र पौत्र था, जिसकी कोई आय नहीं होने से माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनेक निर्णयों में प्रतिपादित सिद्धांत के अनुसार उसकी नोशनल आय 15,000/- रुपए वार्षिक मानते हुए उस पर 15 का गुणक उपयोग करते हुए क्षतिपूर्ति राशि दिलाई जानी चाहिए । उनका कथन है कि मृतक सुरज्ञान की मृत्यु के समय उसकी उम्र 25 वर्ष थी, वह खेती-बाड़ी व दूध बेचने का काम करता था । किन्तु मृतक सुरज्ञान की भी आय का सही रूप से निर्धारण नहीं करते हुए न्यून क्षतिपूर्ति राशि दिलाई गई है । इसी प्रकार मृतका मोत्यादेवी के संबंध में उनका तर्क है कि वह सिलाई-बुनाई का कार्य कर 4000/- रुपए कमाती थी एवं अपना परिवार का भरणपोषण करती थी किन्तु मृतक सुरज्ञान व मोत्यादेवी की आय का निर्धारण सही रूप से नहीं किया गया है । इस प्रकार अपीलार्थी-क्लेमेन्ट्स को अत्यन्त ही कम क्षतिपूर्ति राशि दिलाई गई है । उनका तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण नहीं कर अपना निर्णय पारित किया है, जो विधिसम्मत नहीं है । उनका कथन है कि आक्षेपित निर्णय को संशोधित करते हुए अपीलार्थीगण को दिलाई गई क्षतिपूर्ति राशि को उपयुक्त सीमा तक बढ़ाया जावे । उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान इस न्यायालय द्वारा एकलपीठ सिविल विविध अपील संख्या 3424/2011 में पारित निर्णय दिनांक 20 जुलाई, 2011 एवं विधि दृष्टांत **देवीसिंह** बनाम **विक्रम सिंह और अन्य**[1], **नन्हेलाल गोंतिया और अन्य** बनाम **हरीशचन्द और अन्य**[2], **बाबू सिंह** बनाम **मोहम्मद इरफान और अन्य**[3], **शोभागमल जैन** बनाम **राजस्थान**

---

[1] 2008 ए. सी. जी. 393.

[2] 2009 ए. सी. जी. 981.

[3] 2009 ए. सी. जी. 1830.

राज्य और अन्य[1] और **अरुण कुमार अग्रवाल और अन्य** बनाम **नेशनल इंश्योरेन्स कम्पनी और अन्य**[2] की ओर आकर्षित किया ।

5. जबकि आपत्तिकर्ता बीमा कम्पनी के विद्वान् अधिवक्ता का तर्क है कि दुर्घटना में लिप्त वाहन एच टी वी था और चालक के पास सिर्फ एल एम वी व ट्रांसपोर्ट व्हीकल चलाने का लाइसेन्स था । इस प्रकार वाहन को बीमा शर्तों के विपरीत चलाया गया, जिससे बीमा कम्पनी क्षतिपूर्ति राशि की अदायगी के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराई जा सकती । उनका यह भी तर्क है कि दुर्घटना के समय मोटरसाइकिल चालक सुरज्ञान क्षमता से अधिक 4 व्यक्तियों को बिठाकर ले जा रहा था, जिससे मोटरसाइकिल पर उसका नियंत्रण नहीं रहा । उनका यह भी तर्क है कि दुर्घटना के लिए मोटरसाइकिल चालक मृतक सुरज्ञान भी दोषी है । अतः आक्षेपित निर्णय को निरस्त किया जाए । उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान विधि दृष्टांत **शंकर लाल और अन्य** बनाम **राजस्थान स्टेट ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन और अन्य**[3] की ओर आकर्षित किया है ।

6. मैंने उभयपक्ष के विद्वान् अधिवक्तागण के तर्कों पर मनन किया । आक्षेपित निर्णय का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया । मेरे मत में विद्वान् अधिकरण द्वारा पारित निर्णय में हस्तक्षेप किए जाने का कोई आधार नहीं है । विद्वान् अधिकरण ने विधि के अपेक्षित अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण करने के उपरान्त अपना निर्णय पारित करते हुए क्लेमेन्ट्स को उपयुक्त क्षतिपूर्ति राशि दिलाई है । विद्वान् अधिकरण का निर्णय पूर्णतया विधिसम्मत है ।

7. अतः अपीलार्थीगण-क्लेमेन्ट्स की ओर से प्रस्तुत उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 2505/2009, 3856/2009, 2140/2009 एवं आपत्तिकर्ता बीमा कंपनी की ओर से प्रस्तुत उपरोक्त वर्णित क्रास ओब्जेक्शन संख्या 6/2012, 79/2010 एवं 286/2011 निरस्त किए जाते हैं । मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, जयपुर नगर, जयपुर द्वारा पारित निर्णय दिनांक 6 अक्तूबर, 2008 की पुष्टि की जाती है ।

अपील और प्रति-आपत्तियां खारिज की गईं ।

मही./मह.

---

[1] 2006 (2) टी. ए. सी. 126.

[2] 2010 एम. ए. सी. डी. (एस. सी.) 185.

[3] 2003 ए. सी. जी. 1514.

हैड कांस्टेबल होशियार सिंह

बनाम

हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य

तारीख 1 सितम्बर, 2010

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा

पंजाब पुलिस नियम, 1934 – नियम 13.19 और 13.21 – वीरता पदक – बिना बारी के प्रोन्नति की मांग – नियमों में शिथिलीकरण की अपेक्षा – विभाग द्वारा अनुपयुक्त पाया जाना – याचिका – शिथिलीकरण खंड वैवेकिक है – अतः ऐसे अनुतोष के लिए आदेश जारी नहीं किया जा सकता ।

याची तारीख 15 नवम्बर, 1984 को केन्द्रीय स्टाराइकिंग बल में कांस्टेबल के रूप में भर्ती किया गया था । तारीख 5 मार्च, 1994 को उसे हैड कांस्टेबल के रूप में प्रोन्नत किया गया था । तदोपरांत तारीख 6 जनवरी, 1995 से उसे भारतीय रिजर्व बटालियन में स्थानांतरित कर दिया गया था । तारीख 29 मार्च, 1994 को उसे माइरी के मेले में तैनात किया गया था । उसने, हरजिन्दर सिंह सुपुत्र श्री जागीर सिंह, निवासी बड़ोवल, तहसील जमराव, जिला लुधियाना के जीवन की रक्षा की थी जो कि दुर्घटनावश कुंए में गिर गया था । प्रधानमंत्री के पुलिस मेडल के लिए उसके नाम की सिफारिश की गई थी । याची का नाम उपाबंध ए-6 और ए-7 में वर्णित किया गया था । याची ने प्रत्यर्थियों को बिना बारी के प्रोन्नति के लिए अनेक स्मरणपत्र दिए थे । याची ने प्रोन्नति से इनकार करने पर यह रिट याचिका फाइल की । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि याची को उपाबंध ए-6 और ए-7 के अनुसार प्रधानमंत्री का पुलिस पदक दिया गया था । जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया गया है, उसने बिना बारी के प्रोन्नति हेतु अनेक अभ्यावेदन दिए थे । पंजाब पुलिस नियमों के नियम 13.19 के उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि कांस्टेबल को बिना बारी के प्रोन्नति दी जा सकती है । याची को पहले ही तारीख 5 मार्च,

1994 से हैड कांस्टेबल के रूप में प्रोन्नत किया जा चुका है । उत्तर की अंतर्वस्तु के अनुसार, पंजाब पुलिस नियमों के नियम 13.21 के अधीन उसके मामले पर विचार किया गया था, किन्तु उसे उपयुक्त नहीं पाया गया था । याची के अभ्यावेदन को तारीख 15 जुलाई, 1997 को अस्वीकार कर दिया गया था । शिथिलीकरण खंड वैवेकिक है और इसका ऊपर उल्लिखित कारणों के आधार पर ही अवलंब लिया जा सकता है । (पैरा 5)

आरम्भिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2008 की सी. डब्ल्यू. पी. (टी.) सं. 4686.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री डी. पी. गुप्ता और के. डी. श्रीधर

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री पी. एम. नेगी, उप-महाधिवक्ता और आर. पी. सिंह, सहायक महाधिवक्ता

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा – याची तारीख 15 नवम्बर, 1984 को केन्द्रीय स्टाराइकिंग बल में कांस्टेबल के रूप में भर्ती किया गया था । तारीख 5 मार्च, 1994 को उसे हैड कांस्टेबल के रूप में प्रोन्नत किया गया था । तदोपरांत तारीख 6 जनवरी, 1995 से उसे भारतीय रिजर्व बटालियन में स्थानांतरित कर दिया गया था । तारीख 29 मार्च, 1994 को उसे माइरी के मेले में तैनात किया गया था । उसने, हरजिन्दर सिंह सुपुत्र श्री जागीर सिंह, निवासी बड़ोवल, तहसील जमराव, जिला लुधियाना के जीवन की रक्षा की थी जो कि दुर्घटनावश कुंए में गिर गया था । प्रधानमंत्री के पुलिस मेडल के लिए उसके नाम की सिफारिश की गई थी । याची का नाम उपाबंध ए-6 और ए-7 में वर्णित किया गया था । याची ने प्रत्यर्थियों को बिना बारी के प्रोन्नति के लिए अनेक स्मरणपत्र दिए थे ।

2. श्री डी. पी. गुप्ता ने जोर देकर यह दलील दी कि उनके मुवक्किल को प्रधानमंत्री के पुलिस मेडल से अलंकृत किया जा चुका है इसलिए उसे पंजाब पुलिस नियमों के नियम 13.19 के अनुसार बिना बारी के प्रोन्नति दी जानी चाहिए । उन्होंने यह दलील दी कि इसी प्रकार की समान स्थिति वाले व्यक्तियों को बिना बारी के प्रोन्नत किया जा चुका है । उन्होंने यह भी दलील दी कि याची के मामले पर शिथिलीकरण खण्ड का

अवलंब लेकर विचार किए जाने की भी आवश्यकता थी ।

3. विद्वान् उप-महाधिवक्ता श्री पी. एम. नेगी ने जोर देकर यह दलील दी कि चूंकि याची पहले ही हैड कांस्टेबल के रूप में नियुक्त किया जा चुका है इसलिए पंजाब पुलिस नियमों के नियम 13.19 का अवलंब नहीं लिया जा सकता और याची के मामले में शिथिलीकरण के लिए भी विचार किया गया था ।

4. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और ध्यानपूर्वक अभिवचनों का परिशीलन किया ।

5. इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि याची को उपाबंध ए-6 और ए-7 के अनुसार प्रधानमंत्री का पुलिस पदक दिया गया था । जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया गया है, उसने बिना बारी के प्रोन्नति हेतु अनेक अभ्यावेदन दिए थे । पंजाब पुलिस नियमों के नियम 13.19 के उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि कांस्टेबल को बिना बारी के प्रोन्नति दी जा सकती है । याची को पहले ही तारीख 5 मार्च, 1994 से हैड कांस्टेबल के रूप में प्रोन्नत किया जा चुका है । उत्तर की अंतर्वस्तु के अनुसार, पंजाब पुलिस नियमों के नियम 13.21 के अधीन उसके मामले पर विचार किया गया था, किन्तु उसे उपयुक्त नहीं पाया गया था । याची के अभ्यावेदन को तारीख 15 जुलाई, 1997 को अस्वीकार कर दिया गया था । शिथिलीकरण खंड वैवेकिक है और इसका ऊपर उल्लिखित कारणों के आधार पर ही अवलंब लिया जा सकता है ।

6. तद्नुसार इस याचिका में कोई बल प्रतीत नहीं होता है और इसे किसी खर्चे के आदेश के बिना खारिज किया जाता है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

भ./मह.

पद्मा देवी (श्रीमती) और अन्य

बनाम

सोमा देवी (श्रीमती)

तारीख 13 जून, 2011

न्यायमूर्ति दीपक गुप्ता

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 [सपठित रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 58 और 60] – द्वितीय अपील – विक्रय-विलेख का निष्पादन – प्रतिफलरहित होना – कपट और असम्यक् प्रभाव के अधीन निष्पादन – यदि यह साबित कर दिया जाता है कि विक्रय-विलेख प्रतिफलरहित है तथा इसे कपट एवं असम्यक् प्रभाव के अधीन निष्पादित कराया गया है तो उसे प्रथमदृष्ट्या ही अभिखण्डित कर दिया जाएगा – उसका कोई विधिक प्रभाव नहीं होगा और इसे विधि में कायम नहीं रखा जा सकेगा ।

वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी ने व्यादेश की घोषणा और पारिणामिक अनुतोष के लिए प्रतिवादियों के विरुद्ध एक वाद फाइल किया था । वादी ने यह दावा किया है कि वह फती धालपुर, कोठी महाराजा, तहसील और जिला कुल्लू में स्थित 6 बिस्वा वाद सम्पत्ति में कब्जे सहित स्वामी और उस पर निर्मित दो तल्ला मकान में 1/3 हिस्से का कब्जे सहित स्वामी होने का दावा किया है । मामले के अविवादित तथ्य यह है कि यह सम्पत्ति वादी के पिता श्री सवरु द्वारा धारित थी और वादी अपने पिता के साथ वाद सम्पत्ति के ऊपर स्थित मकान में रहता था । दुर्भाग्यवश श्री सवरु राम की मृत्यु हो गई । श्री सवरु ने अपने पीछे अपनी विधवा श्रीमती बेसरु, वादी सोमा देवी और अपने भाई को छोड़ गया था और प्रत्येक ने सम्पत्ति में 1/3 हिस्सा प्राप्त किया । बाद में, श्रीमती बेसरु की मृत्यु हो गई तथा वादी और उसके भाई ने श्री पूरन चन्द, प्रतिवादी सं. 1, जो उनका चाचा है, की देखभाल की और अपनी अभिरक्षा में रखा । वादी ने कुछ समय बाद फरवरी, 1992 में विवाह कर लिया । वादी के अनुसार, उस समय वह अवयस्क थी किन्तु प्रतिवादियों के अनुसार वह वयस्क थी किन्तु उसे मामले में नहीं लिया गया था । वादी का पक्षकथन यह है कि तारीख 25 मई, 1992 को प्रतिवादी सं. 1 वादी से मिला और उसे यह बताया कि

उसकी माता की सम्पत्ति उसके नाम में नामांतरित हो गई है और उसे इस प्रयोजन के लिए तारीख 25 मई, 1992 को तहसील कार्यालय में आना अपेक्षित है । उसने यह बताया कि वह या तो एक काउंसिल नियुक्त कर सकती है या अपनी ओर से उसके नाम में नामांतरण अनुप्रमाणन प्राप्त करने के लिए अपनी ओर से प्रतिवादी सं. 1 को कह सकती है । वादी कुटुम्ब में थी और उसने अपने मुख्तारनामे के रूप में प्रतिवादी सं. 1 को नियुक्त किया । उसका पक्षकथन यह है कि प्रतिवादी सं. 1 को उसने मात्र अपने नाम में नामांतरण अनुप्रमाणन प्राप्त करने के लिए ही अपने मुख्तारनामे के रूप में नियुक्त किया था । यह मुख्तारनामा तारीख 25 मई, 1992 को निष्पादित किया गया था जिस तारीख को वादी से विभिन्न कागजातों और रजिस्टर पर कई हस्ताक्षर कराए गए थे और उसके पश्चात् वह वापस लौट गई इस आश्वासन पर कि इस एवज में सभी औपचारिकताएं पूरी कर ली गई हैं । मार्च, 1997 में, वादी ने अपने पति और बच्चे के साथ वाद सम्पत्ति में रहने की इच्छा व्यक्त की क्योंकि वह अपने बच्चे को बेहतर स्कूल में दाखिला कराना चाहती थी । पुनः, प्रतिवादी सं. 1 ने उसे अपने बच्चे को अपने गांव में शिक्षा दिलाने की सलाह दी । प्रतिवादी सं. 1 वादी के दिमाग को प्रभावित करने की स्थिति में था क्योंकि वह उसे लाया था । वर्ष 1997 में स्वयं वादी की जानकारी में यह आया कि किसी व्यक्ति ने उस पर न्यायालय का समन तामील की है । उसके पश्चात्, वादी प्रतिवादी सं. 1 से मिली जिसने इसके बारे में अपनी अनभिज्ञता जाहिर की किन्तु वादी को यह सुनिश्चित किया कि वह मामले को देखेगा । इसके बाद, वादी को कुछ गलत होने का संदेह हुआ और वह न्यायालय में गई और यह पाया कि प्रतिवादी सं. 1 द्वारा उसके और उसके भाई के विरुद्ध एक विभाजन वाद फाइल किया गया है । आगे जांच करने पर यह प्रकट हुआ कि प्रतिवादी सं. 1 वादी के मुख्तारनामा के रूप में कार्य करते हुए उसके 1/3 हिस्से को बेच दिया था जो उसकी पत्नी, प्रतिवादी सं. 2 के हिस्से में दो बिस्वा आती थी जो वादी की सगी चाची थी और इस संबंध में, नामांतरण सं. 3599 भी प्रतिवादी सं. 1 के नाम में अनुप्रमाणित थी । तद्नुसार, वादी ने यह दावा किया कि प्रतिवादियों ने उसके साथ कपट किया है और प्रतिवादी सं. 1 ने उसके साथ कपट करते हुए उससे एक मुख्तारनामा निष्पादित करा लिया था और यह कि उसने बिना किसी प्रतिफल के प्रतिवादी सं. 2 के पक्ष में एक विक्रय-विलेख करा लिया था । वादी ने वाद सम्पत्ति में कब्जे सहित स्वामी होने का दावा किया

है । प्रतिवादियों ने वाद का विरोध किया । प्रतिवादियों के अनुसार, वादी के माता-पिता की मृत्यु के पश्चात्, वादी और उसके भाई कि उनके द्वारा देखभाल और रख-रखाव किया जाता था । प्रतिवादी सं. 1 के अनुसार, उसने वादी के भरणपोषण और उसके विवाह पर एक बड़ी रकम खर्च की है । प्रतिवादियों का पक्षकथन यह है कि उन्होंने वादी के साथ कोई कपट नहीं किया है और यह कि वादी-प्रतिवादी सं. 2 के पक्ष में वाद सम्पत्ति का विक्रय करने के लिए सहमत थी और इस प्रयोजन के लिए उसने मुख्तारनामा निष्पादित किया था क्योंकि उस समय पर सम्पूर्ण प्रतिफल रकम प्रतिवादी सं. 2 के पास तुरन्त उपलब्ध नहीं थी । दोनों निचले न्यायालयों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रतिवादी सं. 1 ने कपट और तथ्यों का दुर्व्यपदेशन करके वादी से मुख्तारनामा निष्पादित करा लिया था । उन्होंने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि विक्रय-विलेख बिना किसी प्रतिफल के है । तद्नुसार, वादी का वाद डिक्री कर दिया गया था । इससे व्यथित होकर वर्तमान द्वितीय अपील फाइल की गई । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस प्रकार, यह सुस्पष्ट है कि नामांतरण कार्यवाहियों में या अन्यथा अभिलिखित कथन अथवा रजिस्ट्रार द्वारा किए गए पृष्ठांकन को विधि के अनुसरण में साबित करना होता है और इसे साक्ष्य में नहीं लिया जा सकता है । यद्यपि यह नियमित द्वितीय अपील अन्य विधि के प्रश्नों पर स्वीकृत की गई है, न्यायालय के मत में, इस अपील में मात्र निम्नलिखित विधि के प्रश्न उद्भूत होते हैं – (1) क्या धारा 60 के निबंधनों में रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज पर किया गया पृष्ठांकन स्वयं ही पृष्ठांकन में किए गए तथ्यों का साक्ष्य होता है या उन्हें विधि या साक्ष्य के अनुसरण में साबित करना होता है ? (2) क्या कपट की विशिष्टियों को वादी द्वारा विनिर्दिष्टतः अभिवाचित नहीं किया गया है, यदि ऐसा है, तो इसका प्रभाव ? जहां तक प्रश्न सं. 1 का संबंध है, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि को ध्यान में रखते हुए, उसे वादी के विरुद्ध और प्रतिवादियों के पक्ष में विनिश्चित किया जाता है । (पैरा 17, 18 और 19)

अब द्वितीय प्रश्न पर विचार करते हैं, न्यायालय के मत में, तथ्य सविस्तार दिए गए हैं । इस तथ्य को नहीं भूल सकते हैं कि वादपत्र संक्षिप्ततः फाइल किया गया था और कभी-कभी अभिवचन विस्तारपूर्वक नहीं होते हैं । किसी भी दशा में, जैसा कि उपर्युक्त कथित तथ्यों से प्रकट होता है, ऋजुतः कपट की विशिष्टियों को सविस्तार वर्णित किया गया था । कपट के मुद्दे पर निकाला गया निष्कर्ष, शुद्धतः तथ्य का निष्कर्ष है

न कि विधि का । दोनों विद्वान् निचले न्यायालयों ने तथ्य का यह निष्कर्ष निकाला है कि विक्रय-विलेख बिना किसी प्रतिफल के था और प्रतिवादी सं. 1 द्वारा कपटपूर्वक तथा असम्यक् प्रभाव का प्रयोग करते हुए वादी से मुख्तारनामा निष्पादित करा लिया गया था । तथ्य के इन निष्कर्षों में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है । (पैरा 20 और 22)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2009]	(2009) 12 एस. सी. सी. 95 : **बेलची (मृत)** मार्फत **उसके विधिक प्रतिनिधिगण** बनाम **पकीरन** ;	21
[2007]	(20027) 9 एस. सी. सी. 728 : **बेन्जा बेहरा और एक अन्य** बनाम **बृज किशोर नन्द और अन्य** ;	16
[2003]	(2003) 12 एस. सी. सी. 35 : **भगत राम और एक अन्य** बनाम **सुरेश और अन्य** ;	15
[2002]	(2002) 2 एस. एल. सी. 213 : **कृपा राम** बनाम **मैना** ;	11
[1970]	(1970) 2 एस. सी. सी. 773 : **शिव लाल और अन्य** बनाम **चेत राम और अन्य** ;	14
[1955]	ए. आई. आर. 1955 (42) एन. यू. सी. (हिमाचल प्रदेश) 4304 : **श्री झुमको और एक अन्य** बनाम **साध** ।	10

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2000 की नियमित द्वितीय अपील सं. 279.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री भूपेन्द्र गुप्ता, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ नीरज गुप्ता

प्रत्यर्थी की ओर से श्री बी. सी. नेगी, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति दीपक गुप्ता – मामले के संक्षिप्त तथ्य यह है कि प्रत्यर्थी (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'वादी' कहा गया है) ने व्यादेश की घोषणा और पारिणामिक अनुतोष के लिए प्रतिवादियों के विरुद्ध एक वाद फाइल किया था । वादी ने यह दावा किया है कि वह फती धालपुर, कोठी महाराजा, तहसील और जिला कुल्लू में स्थित 6 बिस्वा वाद सम्पत्ति में कब्जे सहित स्वामी और उस पर निर्मित दो तल्ला मकान में 1/3 हिस्से का कब्जे सहित स्वामी होने का दावा किया है ।

2. मामले के अविवादित तथ्य यह है कि यह सम्पत्ति वादी के पिता श्री सवरु द्वारा धारित थी और वादी अपने पिता के साथ वाद सम्पत्ति के ऊपर स्थित मकान में रहता था । दुर्भाग्यवश श्री सवरु राम की मृत्यु हो गई । श्री सवरु ने अपने पीछे अपनी विधवा श्रीमती बेसरु, वादी सोमा देवी और अपने भाई को छोड़ गया था और प्रत्येक ने सम्पत्ति में 1/3 हिस्सा प्राप्त किया । बाद में, श्रीमती बेसरु की मृत्यु हो गई तथा वादी और उसके भाई ने श्री पूरन चन्द, प्रतिवादी सं. 1, जो उनका चाचा है, की देखभाल की और अपनी अभिरक्षा में रखा । वादी ने कुछ समय बाद फरवरी, 1992 में विवाह कर लिया । वादी के अनुसार, उस समय वह अवयस्क थी किन्तु प्रतिवादियों के अनुसार वह वयस्क थी किन्तु उसे मामले में नहीं लिया गया था ।

3. वादी का पक्षकथन यह है कि तारीख 25 मई, 1992 को प्रतिवादी सं. 1 वादी से मिला और उसे यह बताया कि उसकी माता की सम्पत्ति उसके नाम में नामांतरित हो गई है और उसे इस प्रयोजन के लिए तारीख 25 मई, 1992 को तहसील कार्यालय में आना अपेक्षित है । उसने यह बताया कि वह या तो एक काउंसिल नियुक्त कर सकती है या अपनी ओर से उसके नाम में नामांतरण अनुप्रमाणन प्राप्त करने के लिए अपनी ओर से प्रतिवादी सं. 1 को कह सकती है । वादी कुटुम्ब में थी और उसने अपने मुख्तारनामे के रूप में प्रतिवादी सं. 1 को नियुक्त किया । उसका पक्षकथन यह है कि प्रतिवादी सं. 1 को उसने मात्र अपने नाम में नामांतरण अनुप्रमाणन प्राप्त करने के लिए ही अपने मुख्तारनामे के रूप में नियुक्त किया था । यह मुख्तारनामा तारीख 25 मई, 1992 को निष्पादित किया गया था जिस तारीख को वादी से विभिन्न कागजातों और रजिस्टर पर कई हस्ताक्षर कराए गए थे और उसके पश्चात् वह वापस लौट गई इस आश्वासन पर कि इस एवज में सभी औपचारिकताएं पूरी कर ली गई हैं ।

4. मार्च, 1997 में, वादी ने अपने पति और बच्चे के साथ वाद सम्पत्ति में रहने की इच्छा व्यक्त की क्योंकि वह अपने बच्चे को बेहतर स्कूल में दाखिला कराना चाहती थी । पुनः, प्रतिवादी सं. 1 ने उसे अपने बच्चे को अपने गांव में शिक्षा दिलाने की सलाह दी । प्रतिवादी सं. 1 वादी के दिमाग को प्रभावित करने की स्थिति में था क्योंकि वह उसे लाया था ।

5. वर्ष 1997 में स्वयं वादी की जानकारी में यह आया कि किसी व्यक्ति ने उस पर न्यायालय का समन तामील की है । उसके पश्चात्, वादी प्रतिवादी सं. 1 से मिली जिसने इसके बारे में अपनी अनभिज्ञता जाहिर की किन्तु वादी को यह सुनिश्चित किया कि वह मामले को देखेगा । इसके बाद, वादी को कुछ गलत होने का संदेह हुआ और वह न्यायालय में गई और यह पाया कि प्रतिवादी सं. 1 द्वारा उसके और उसके भाई के विरुद्ध एक विभाजन वाद फाइल किया गया है । आगे जांच करने पर यह प्रकट हुआ कि प्रतिवादी सं. 1 वादी के मुख्तारनामा के रूप में कार्य करते हुए उसके 1/3 हिस्से को बेच दिया था जो उसकी पत्नी, प्रतिवादी सं. 2 के हिस्से में दो बिस्वा आती थी जो वादी की सगी चाची थी और इस संबंध में, नामांतरण सं. 3599 भी प्रतिवादी सं. 1 के नाम में अनुप्रमाणित थी । तद्नुसार, वादी ने यह दावा किया कि प्रतिवादियों ने उसके साथ कपट किया है और प्रतिवादी सं. 1 ने उसके साथ कपट करते हुए उससे एक मुख्तारनामा निष्पादित करा लिया था और यह कि उसने बिना किसी प्रतिफल के प्रतिवादी सं. 2 के पक्ष में एक विक्रय-विलेख करा लिया था । वादी ने वाद सम्पत्ति में कब्जे सहित स्वामी होने का दावा किया है ।

6. प्रतिवादियों ने वाद का विरोध किया । प्रतिवादियों के अनुसार, वादी के माता-पिता की मृत्यु के पश्चात्, वादी और उसके भाई कि उनके द्वारा देखभाल और रख-रखाव किया जाता था । प्रतिवादी सं. 1 के अनुसार, उसने वादी के भरणपोषण और उसके विवाह पर एक बड़ी रकम खर्च की है । प्रतिवादियों का पक्षकथन यह है कि उन्होंने वादी के साथ कोई कपट नहीं किया है और यह कि वादी-प्रतिवादी सं. 2 के पक्ष में वाद सम्पत्ति का विक्रय करने के लिए सहमत थी और इस प्रयोजन के लिए उसने मुख्तारनामा निष्पादित किया था क्योंकि उस समय पर सम्पूर्ण प्रतिफल रकम प्रतिवादी सं. 2 के पास तुरन्त उपलब्ध नहीं थी ।

7. दोनों निचले न्यायालयों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रतिवादी

सं. 1 ने कपट और तथ्यों का दुर्व्यपदेशन करके वादी से मुख्तारनामा निष्पादित करा लिया था । उन्होंने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि विक्रय-विलेख बिना किसी प्रतिफल के है । तद्नुसार, वादी का वाद डिक्री कर दिया गया था ।

8. प्रतिवादियों-अपीलार्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री भूपेन्द्र गुप्ता ने यह निवेदन किया है कि वादी ने वादपत्र में प्रतिवादियों द्वारा किए गए अभिकथित कपट के बारे में कोई अभिवाक् नहीं किया है । उन्होंने यह भी निवेदन किया कि वादी उस समय उपस्थित थी जब मुख्तारनामा निष्पादित किया गया था और रजिस्ट्रार द्वारा उस पर पृष्ठांकन किया गया था, यह दर्शित करते हुए कि उसे निष्पादक को पढ़कर सुनाया गया था और स्पष्टीकरण किया गया था और इसलिए, वादी को यह कथन करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है कि वह यह नहीं जानती है कि वे दस्तावेज क्या थे जिस पर उसने अपने हस्ताक्षर किए थे । श्री गुप्ता ने रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 58 और 60 के प्रति विनिर्दिष्टतः निर्देश किया है ।

9. पक्षकारों के विरोधी दलीलों का मूल्यांकन करने के पश्चात्, रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 58 और 60 के प्रति निदेश करना उपयुक्त होगा, जो इस प्रकार है :–

> "58. **रजिस्ट्रीकरण के लिए गृहीत दस्तावेजों पर पृष्ठांकित की जाने वाली विशिष्टियां** – (1) रजिस्ट्रीकरण के लिए गृहीत हर दस्तावेज पर, जो डिक्री या आदेश की प्रति से भिन्न है या रजिस्ट्रीकर्ता आफिसर को धारा 89 के अधीन भेजी गई प्रति न हो, निम्नलिखित विशिष्टियां समय-समय पर पृष्ठांकित की जाएंगी, अर्थात् –
>
> > (क) दस्तावेज के निष्पादन को स्वीकृत करने वाले हर व्यक्ति के हस्ताक्षर और अभिवर्णन और यदि ऐसा निष्पादन किसी व्यक्ति के प्रतिनिधि, समनुदेशिती या अभिकर्ता द्वारा स्वीकृत किया गया है तो ऐसे प्रतिनिधि, समनुदेशिती या अभिकर्ता के हस्ताक्षर और अभिवर्णन,
> >
> > (ख) ऐसी दस्तावेज के प्रति निर्देश से इस अधिनियम के उपबंधों में से किसी भी उपबंध के अधीन परीक्षित हर व्यक्ति के हस्ताक्षर और अभिवर्णन, तथा

(ग) दस्तावेजन के निष्पादन के प्रति निर्देश से रजिस्ट्रीकर्ता आफिसर की उपस्थिति में दिए गए धन का कोई भी संदाय या वस्तुओं का कोई भी परिदान और ऐसे निष्पादन के प्रति निर्देश से उसकी उपस्थिति में सम्पूर्ण प्रतिफल या उसके भाग की प्राप्ति की कोई स्वीकृति ।

(2) यदि दस्तावेज का निष्पादन स्वीकृत करने वाला कोई व्यक्ति उसे पृष्ठांकित करने से इनकार करे तो ऐसे होने पर भी रजिस्ट्रीकर्ता आफिसर उसका रजिस्ट्रीकृत करेगा, किन्तु उसी समय ऐसे इनकार का टिप्पण पृष्ठांकित कर देगा ।

60. **रजिस्ट्रीकरण का प्रमाणपत्र** – (1) धाराओं 34, 35, 58 और 59 के उपबंधों में से उन उपबंधों का, जो रजिस्ट्रीकरण के लिए उपस्थापित की गई किसी दस्तावेज को लागू है, अनुपालन हो जाने के पश्चात् रजिस्ट्रीकर्ता आफिसर ऐसा प्रमाणपत्र, जिसमें रजिस्ट्रीकृत शब्द अंतर्विष्ट हो उस पुस्तक के संख्यांक और पृष्ठ के सहित, जिसमें उस दस्तावेज की नकल की गई है, उस पर पृष्ठांकित करेगा ।

(2) ऐसा प्रमाणपत्र रजिस्ट्रीकर्ता आफिसर द्वारा हस्ताक्षरित, मुद्रांकित और दिनांकित किया जाएगा और तब वह यह साबित करने के प्रयोजन के लिए ग्राह्य होगा कि वह दस्तावेज इस अधिनियम द्वारा उपबंधित रीति से सम्यक् रूप में रजिस्ट्रीकृत की गई है और धारा 59 में निर्दिष्ट पृष्ठांकनों में वर्णित तथ्य वैसे ही घटित हुए हैं जैसे कि उसमें वर्णित हैं ।"

10. श्री गुप्ता ने **श्री झुमको और एक अन्य** बनाम **साध**[1] वाले मामले में न्यायिक आयुक्त, हिमाचल प्रदेश द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि नामांतरण अभिलेख में जो प्रविष्टियां की गई होती हैं उन्हीं से सत्य की अवधारणा की जा सकती है ।

11. उन्होंने **कृपा राम** बनाम **मैना**[2] वाले मामले में इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय का भी अवलंब लिया जिसमें विद्वान् एकल न्यायाधीश ने तहसीलदार द्वारा किए गए पृष्ठांकन का अवलंब लिया था । तथापि, यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि उक्त मामले में

---

[1] ए. आई. आर. 1955 (42) एन. यू. सी. (हिमाचल प्रदेश) 4304.

[2] (2002) 2 एस. एल. सी. 213.

उप-रजिस्ट्रार की परीक्षा प्रतिवादी साक्षी/3 के रूप में की गई थी ।

12. वर्तमान मामले में वादी ने वादी साक्षी/1 के रूप में स्वयं परीक्षा कराई थी । प्रतिवादी सं. 1 पूरण चन्द प्रतिवादी साक्षी/1 के रूप में उपस्थित हुआ था और पक्षकारों द्वारा कोई अन्य साक्ष्य दर्शित नहीं किया गया था । प्रश्न यह उद्भूत होता है कि क्या रजिस्ट्रार की परीक्षा किए बिना उस दस्तावेज पर किए गए पृष्ठांकन का अवलंब लिया जा सकता है यह अभिनिर्धारित करने के लिए कि दस्तावेजों को पढ़कर सुनाया गया था और उसका स्पष्टीकरण किया गया था । मात्र यही विधि का प्रश्न है जो इस मामले में उद्भूत होता है ।

13. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **शिव लाल और अन्य** बनाम **चेत राम और अन्य**[1] वाले मामले पर विचार किया था जहां नामांतरण कार्यवाहियों में अभिलिखित कथन का अवलंब लिया गया था और नामांतरण की प्रति को भी अभिलेख पर रखा गया था । माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया था :–

> "इसकी मूल प्रति प्रस्तुत नहीं की गई है । इस तथ्य का कथन करने के लिए किसी साक्षी की परीक्षा नहीं की गई है कि व्यक्ति, जिनके मूल हस्ताक्षर दर्शित किए गए हैं वस्तुतः उन्होंने ही हस्ताक्षर किए हैं या वे व्यक्ति ही बंधककर्ता या उनके प्रतिनिधि हैं । मूल प्रति पर हस्ताक्षर से उन्हें प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करके साबित नहीं किया जा सकता है । न ही न्यायालय, साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 90 के अधीन इस बारे में कोई उपधारणा कर सकता है । देखें हरि प्रसाद सिंह और एक अन्य **बनाम** मुंशी नाथ प्रसाद और अन्य (ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 305) उच्च न्यायालय और प्रथम अपील न्यायालय ने त्रुटिपूर्वक यह विचार किया कि वे यह उपधारणा कर सकते हैं कि पंजाब भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 44 और साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114(ङ) के अधीन प्रतिलिपि में निष्पादी के रूप में उल्लिखित व्यक्तियों के मूल हस्ताक्षर हो सकते हैं । पंजाब भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 44 अधिकारों के अभिलेख में प्रविष्टि के बारे में उपधारणा पर विचार करता है । हम प्रदर्श पी 5 में मूल हस्ताक्षर की सत्यता और उन व्यक्तियों की शनाख्त जो इस पर हस्ताक्षर किए हैं, के बारे में विचार कर रहे हैं ।

---

[1] (1970) 2 एस. सी. सी. 773.

अतएव, उक्त धारा से कोई सहायता नहीं मिलती है । साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114(ङ) में यह कथित है कि न्यायालय न्यायिक या कार्यालय कार्य के बारे में यह उपधारणा कर सकता है कि इन्हें नियमित तौर पर किया गया है । यहां हम किसी कार्यालय कार्य के अनुपालन की निरन्तरता के बारे में विचार नहीं कर रहे हैं । एक निष्पादी की शनाख्त या हमारे समक्ष फाइल कथन में हस्ताक्षर की सत्यता के कार्य की निरन्तरता के बारे में कुछ भी शासकीय नहीं है जब तक कि यह दर्शित नहीं होता है कि उसकी उस व्यक्ति की शनाख्त करने की ड्यूटी है जिसने इस पर हस्ताक्षर किए हैं और उसकी उपस्थिति में ही हस्ताक्षर कराए गए हैं । इसलिए, प्रदर्श पी-5 को बन्धक की अभिस्वीकृति के रूप में नहीं माना जा सकता है ।"

14. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **भगत राम और एक अन्य** बनाम **सुरेश और अन्य**[1] वाले मामले में इसी प्रकार के मुद्दे पर विचार करते हुए, निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"20. रजिस्ट्रार, अनुप्रमाणन साक्षी के निबंधनानुसार उसे साक्षी कठघरे में बुलाएगा । न्यायालय उसके परिसाक्ष्य से यह समाधान निकालेगा कि एक अनुप्रमाणन साक्षी होने के लिए अपेक्षित आवश्यकताएं पूरी हो रही हैं । इसी प्रकार का मत पंजाब उच्च न्यायालय द्वारा कई विनिश्चयों में अपनाया गया है जिन्हें अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा उद्धृत किया गया है और ईयरनेस्ट बेन्टो साउजा **बनाम** जान फ्रांसिस साउजा और अन्य (ए. आई. आर. 1958 कलकत्ता 440) वाले मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ के विनिश्चय में तथा कोटनी आर. एन. सुबोधी **बनाम** वी. आर. एल. मूर्ति राजू (ए. आई. आर. 1961 उड़ीसा 190) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय में भी अपनाया गया ।

21. दस्तावेज का रजिस्ट्रीकरण उस दस्तावेज के निष्पादन और अनुप्रमाणन साबित करने की आवश्यकता होती है जो साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 68 में यथाउपबंधित तरीके से साबित किए जाने के लिए विधि द्वारा अपेक्षित है । रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 58 के अधीन रजिस्ट्रार रजिस्ट्रीकरण के लिए गृहीत प्रत्येक दस्तावेजों पर निम्नलिखित विशिष्टियां पृष्ठांकित करेगा –

---

[1] (2003) 12 एस. सी. सी. 35.

(1) रजिस्ट्रीकरण के लिए दस्तावेजों को प्रस्तुत करने की तारीख, समय और स्थान,

(2) दस्तावेज के निष्पादन को स्वीकृत करने वाले हर व्यक्ति के हस्ताक्षर और अभिवर्णन और यदि ऐसा निष्पादन किसी व्यक्ति के प्रतिनिधि, समनुदेशिती या अभिकर्ता द्वारा स्वीकृत किया गया है तो ऐसे प्रतिनिधि, समनुदेशिती या अभिकर्ता के हस्ताक्षर और अभिवर्णन,

(3) ऐसी दस्तावेज के प्रति निर्देश से इस अधिनियम के उपबंधों में से किसी भी उपबंध के अधीन परीक्षित हर व्यक्ति के हस्ताक्षर और अभिवर्णन, तथा

(4) दस्तावेजों के निष्पादन के प्रति निर्देश से रजिस्ट्रीकर्ता आफिसर की उपस्थिति में दिए गए धन का कोई भी संदाय या वस्तुओं का कोई भी परिदान और ऐसे निष्पादन के प्रति निर्देश से उसकी उपस्थिति में सम्पूर्ण प्रतिफल या उसके भाग की प्राप्ति की कोई स्वीकृति ।

22. रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 52 और 58 में निर्दिष्ट विशिष्टियों को धारा 59 के अधीन दस्तावेजों पर अपने हस्ताक्षर और तारीख के साथ पृष्ठांकित किया जाना अपेक्षित है और उसके बाद धारा 50 के अधीन प्रमाणित किया जाएगा । साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114 (दृष्टांत (ङ)) में निर्दिष्ट उपधारणा इस प्रभाव की उद्भूत होगी कि रजिस्ट्रीकरण के पृष्ठांकन में अन्तर्विष्ट घटनाएं निरन्तर थीं और सम्यक् रूप से अनुपालन की गई हैं और सही तौर पर अभिलिखित की गई हैं । पृष्ठांकनों में से कोई भी पृष्ठांकन रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 के अधीन विलेखों के रजिस्ट्रार द्वारा की जानी अपेक्षित हैं, जैसाकि, उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63(ग) के अर्थान्तर्गत अनुप्रमाणन या साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 68 के अधीन पृष्ठांकित होनी हैं या विलेखों के रजिस्ट्रार द्वारा प्रमाणित होनी है । रजिस्ट्रीकरण के समय पर किए गए पृष्ठांकन मात्र रजिस्ट्रीकरण के मामले में ही सुसंगत हैं (देखें : कनवर सुरेन्द्र बहादुर सिंह और अन्य **बनाम** ठाकुर बिहारी सिंह और अन्य, ए. आई. आर. 1939 प्रिवी काउंसिल 117) । दस्तावेज, जिसमें विल या कोडीसिल (कोड पत्र) सम्मिलित है, का

रजिस्ट्रीकरण होने के कारण इसके अनुप्रमाणन की सत्यता या निरन्तरता के रूप में उपधारणा नहीं की जा सकती है । जहां दिए गए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, विलेख का रजिस्ट्रार एक अनुप्रमाणक साक्षी की अपेक्षाओं से संतुष्ट होता है तो उसे अनुप्रमाणन का निपटारा करने के लिए अनुप्रमाणक साक्षी को साक्षी कठघरे में बुलाना चाहिए । उसका साक्ष्य किसी अन्य अनुप्रमाणक साक्षी के परिसाक्ष्य की तरह विवेचना और मूल्यांकन के अधीन होगा ।"

15. **बेन्जा बेहरा और एक अन्य** बनाम **बृज किशोर नन्द और अन्य**[1] वाले मामले में भी पुनः इसी प्रकार के मुद्दे पर विचार किया गया जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

"34. यह प्रश्न भी उद्भूत किया गया है कि क्या रजिस्ट्रीकरण के समय पर उप-रजिस्ट्रार द्वारा दिए गए प्रमाणपत्र से अनुप्रमाणन साबित होता है । उप-रजिस्ट्रार, दस्तावेज की रजिस्ट्रीकरण के मामले में रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 के उपबंधों के अधीन कार्य करता है । अधिनियम, 1908 की धारा 52 रजिस्ट्रीकरण अधिकारी के कर्तव्यों को विहित करता है जब उसके निबंधनों में दस्तावेज प्रस्तुत किया जाता है । रजिस्ट्रीकरण के लिए दस्तावेज प्रस्तुत करने वाले प्रत्येक व्यक्ति का हस्ताक्षर प्रस्तुत करने के समय पर ऐसे प्रत्येक दस्तावेज पर पृष्ठांकन किया जाना अपेक्षित होता है । धारा 58 रजिस्ट्रीकरण के लिए स्वीकृत दस्तावेजों पर विशिष्टियां पृष्ठांकित किया जाना विहित किया जाता है जो इस प्रकार हैं –

(क) दस्तावेज का निष्पादन स्वीकृत करने वाले व्यक्ति का हस्ताक्षर,

(ख) दस्तावेज के निष्पादन के प्रति निर्देश से रजिस्ट्रीकर्ता अधिकारी की उपस्थिति में दिए गए धन का कोई भी संदाय या वस्तुओं का कोई परिदान, रजिस्ट्रीकर्ता अधिकारी द्वारा रजिस्ट्रीकरण के लिए प्रस्तुत दस्तावेज में पृष्ठांकित किया जाएगा ।

इसलिए रजिस्ट्रीकर्ता प्राधिकारी पर मात्र यह ड्यूटी अधिरोपित की

---

[1] (2007) 9 एस. सी. सी. 728.

गई है कि वह विल पर पृष्ठांकन करेगा अर्थात् उस व्यक्ति की स्वीकृति या निष्पादन को ही पृष्ठांकित करेगा जिसने रजिस्ट्रीकरण के लिए दस्तावेज प्रस्तुत किया है । इस उपबंध के अनुपालन में यह विधिक उपधारणा की जाती है कि दस्तावेज रजिस्ट्रीकृत हुआ है और कुछ अन्य नहीं ।

35. यदि यह प्राधिकारी अपनी कानूनी ड्यूटी के अनुपालन में दस्तावेज पर हस्ताक्षर करता है तो वह सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 3 और उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 63 के अर्थान्तर्गत अनुप्रमाणक साक्षी नहीं हो जाता है । अनुप्रमाणन का अभिप्राय है –

> 'तथ्य के साक्ष्य को प्रमाणित करना । विधिमान्य अनुप्रमाणन की आवश्यक शर्तें – (i) दो या दो से अधिक साक्षियों ने लिखत पर हस्ताक्षर करते हुए निष्पादी को देखा हो (ii) उनमें से प्रत्येक साक्षी ने निष्पादी की उपस्थिति में लिखत पर हस्ताक्षर किया हो ।'

36. 'अनुप्रमाणन करने का आशय', अनुप्रमाणन साबित करने के लिए एक आवश्यक अवयव है । यदि एक व्यक्ति अपने कानूनी कर्तव्यों के मात्र निर्वहन में एक दस्तावेज पर अपने हस्ताक्षर करता है तो उसे अनुप्रमाणक साक्षी के रूप में नहीं माना जा सकता है ।"

16. इस प्रकार, यह सुस्पष्ट है कि नामांतरण कार्यवाहियों में या अन्यथा अभिलिखित कथन अथवा रजिस्ट्रार द्वारा किए गए पृष्ठांकन को विधि के अनुसरण में साबित करना होता है और इसे साक्ष्य में नहीं लिया जा सकता है ।

17. यद्यपि यह नियमित द्वितीय अपील अन्य विधि के प्रश्नों पर स्वीकृत की गई है, मेरे मत में, इस अपील में मात्र निम्नलिखित विधि के प्रश्न उद्भूत होते हैं :–

> (1) क्या धारा 60 के निबंधनों में रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज पर किया गया पृष्ठांकन स्वयं ही पृष्ठांकन में किए गए तथ्यों का साक्ष्य होता है या उन्हें विधि या साक्ष्य के अनुसरण में साबित करना होता है ?
>
> (2) क्या कपट की विशिष्टियों को वादी द्वारा विनिर्दिष्टतः

अभिवाचित नहीं किया गया है, यदि ऐसा है, तो इसका प्रभाव ?

18. जहां तक प्रश्न सं. 1 का संबंध है, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि को ध्यान में रखते हुए, उसे वादी के विरुद्ध और प्रतिवादियों के पक्ष में विनिश्चित किया जाता है ।

19. अब द्वितीय प्रश्न पर विचार करते हैं, मेरे मत में, तथ्य सविस्तार दिए गए हैं । इस तथ्य को नहीं भूल सकते हैं कि वादपत्र संक्षिप्ततः फाइल किया गया था और कभी-कभी अभिवचन विस्तारपूर्वक नहीं होते हैं । किसी भी दशा में, जैसा कि उपर्युक्त कथित तथ्यों से प्रकट होता है, ऋजुतः कपट की विशिष्टियों को सविस्तार वर्णित किया गया था । कपट के मुद्दे पर निकाला गया निष्कर्ष, शुद्धतः तथ्य का निष्कर्ष है न कि विधि का ।

20. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **बेलची (मृत)** मार्फत **उसके विधिक प्रतिनिधिगण** बनाम **पकीरन**[1] वाले मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "14. इस न्यायालय ने अफसर शेख और एक अन्य **बनाम** सुलेमन बीबी और अन्य, (1976) 2 एस. सी. सी. 142 वाले मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है –
>
> > 'प्रतिवादी अफसर ने अपने लिखित कथन में कपट और दुर्व्यपदेशन के अभिकथनों से इनकार किया । उसने यह प्रकथन किया कि उसकी दादी, वादी की माता की बहन थी । प्रतिवादी के पिता की जब मृत्यु हुई तब वह एक बच्चा था । वादी ने उसे अपने पुत्र के रूप में लाया था । चूंकि वह बाल्यावस्था में था इसलिए प्रतिवादी वादी के साथ रह रहा था, और उसकी देखभाल की और वह उसे अपने पिता के रूप में मानता था, प्रतिवादी ने यह भी कथन किया कि वादी ने अपने नैसर्गिक पुत्र को 10 से 12 बीघा भूमि अन्तरित की और इसी के बराबर अपनी द्वितीय पत्नी को भूमि अन्तरित की । प्रेम और स्नेह से प्रेरित होकर वादी ने प्रतिवादी को भी इसी प्रकार का फायदा दिया और स्वैच्छिक तौर पर सांकेतिक प्रतिफल के रूप में एक धोती अदाता से लेने के पश्चात् उसके पक्ष में हिबा-बिल-एवज

---

[1] (2009) 12 एस. सी. सी. 95.

निष्पादित किया । उसने इस बात से इनकार किया कि वादी दान के समय पर अत्यधिक बूढ़ा और कमजोर था । उसके अनुसार, वादी 75 वर्ष की आयु से अधिक नहीं था । उसने यह भी प्रकथन किया कि वह हिबा निष्पादित करने तक वाद भूमि के कब्जे में था ।' "

यह भी मत व्यक्त किया गया कि (अफसर शेख वाला मामला) –

"20. यह सुस्थिर है कि यह प्रश्न कि क्या एक व्यक्ति अन्य व्यक्ति के विल को प्रभावित करने की प्रास्थिति में था और असम्यक् प्रभाव द्वारा कतिपय विलेख निष्पादित करवा लिया था तो यह तथ्य का प्रश्न है और उस पर निकाला गया निष्कर्ष तथ्य का निष्कर्ष है और यदि विहित प्रक्रिया के अनुसरण में ऋजुतः निष्कर्ष निकाला गया है तो यह द्वितीय अपील में पुनः खोले जाने योग्य नहीं है (सतगुरु प्रसाद **बनाम** हरनारायण दास, लाडली प्रसाद जायसवाल **बनाम** करनाल डिस्टीलरी कम्पनी लि.) ।"

15. अपीलार्थी का पक्षकथन यह नहीं है कि प्रथम अपील न्यायालय द्वारा कपट, असम्यक् प्रभाव आदि के प्रश्न पर निकाला गया निष्कर्ष सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन यथापरिकल्पित अवैधता, लोप या त्रुटि या कमी से दूषित है ।"

21. दोनों विद्वान् निचले न्यायालयों ने तथ्य का यह निष्कर्ष निकाला है कि विक्रय-विलेख बिना किसी प्रतिफल के था और प्रतिवादी सं. 1 द्वारा कपटपूर्वक तथा असम्यक् प्रभाव का प्रयोग करते हुए वादी से मुख्तारनामा निष्पादित करा लिया गया था । तथ्य के इन निष्कर्षों में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है ।

22. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, मैं इस अपील में कोई गुणागुण नहीं पाता हूं, जिसे तद्नुसार, रु. 5,000/- खर्चों के साथ खारिज किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

क.

कुलदीप कुमार

बनाम

हिमाचल प्रदेश राज्य

तारीख 1 जुलाई, 2011

न्यायमूर्ति वी. के. आहूजा

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 72, 161 तथा 226 – माननीय राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराए गए किसी व्यक्ति को क्षमादान प्रदान करना – अभियुक्त की दोषसिद्धि और भोगे गए दंडादेश तथा अनभोगे दंडादेश पर प्रभाव – यदि माननीय राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराए गए किसी व्यक्ति को क्षमादान प्रदान किया जाता है तो उसके परिणामस्वरूप अभियुक्त व्यक्ति की दोषसिद्धि और भोगे गए दंडादेश का क्षमादान नहीं होता है अपितु अभियुक्त द्वारा आगे भोगे जाने वाले दंडादेश का ही क्षमादान होता है जिसके परिणामस्वरूप उसके अनभोगे दंडादेश का निलम्बन, परिहार या लघुकरण हो सकता है ।

वर्तमान मामले में, याची ने तारीख 9 जून, 1977 को स्थानीय लेखापरीक्षा विभाग में लिपिक के रूप में पदग्रहण किया था । उसके पश्चात् उसे तारीख 27 फरवरी, 1978 को कनिष्ठ लेखापरीक्षक के रूप में प्रोन्नति दी गई । तारीख 18 नवम्बर, 1988 को याची भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302, 307 और 324 के अधीन रजिस्ट्रीकृत प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के संबंध में गिरफ्तार हुआ । इसके पश्चात् तारीख 1 फरवरी, 1989 को उसे तारीख 18 नवम्बर, 1988 के तत्काल प्रभाव से निलम्बित कर दिया गया । यह भी प्रकथन किया गया कि तारीख 19 अक्तूबर, 1992 को सेशन न्यायाधीश, ऊना के निर्णय द्वारा याची को सिद्धदोष किया गया । विद्वान् सेशन न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध याची द्वारा प्रस्तुत अपील को इस न्यायालय ने तारीख 25 जुलाई, 1994 के निर्णय द्वारा खारिज कर दिया जिसके विरुद्ध माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील प्रस्तुत की गई जिसे भी तारीख 26 सितम्बर, 1996 को खारिज कर दिया गया । यह भी प्रकथन किया गया कि संयुक्त सचिव (गृह), हिमाचल प्रदेश सरकार ने तारीख 29 जुलाई, 1998 के पत्र (उपाबंध पी-2) द्वारा अपर

महानिदेशक (जेल), हिमाचल प्रदेश को हिमाचल प्रदेश के माननीय राज्यपाल के विनिश्चय को सूचित किया जिसके द्वारा माननीय राज्यपाल ने संविधान, 1950 के अनुच्छेद 161 के अधीन याची का क्षमादान मंजूर कर लिया था और उसे तुरन्त छोड़े जाने का निर्देश दिया था । इसके पश्चात्, अपर महानिदेशक, जेल, हिमाचल प्रदेश ने तारीख 31 जुलाई, 1998 के पत्र (उपाबंध पी-3) द्वारा अधीक्षक, उप-जेल, शिमला को पत्र लिखते हुए याची को तुरन्त छोड़े जाने का निदेश दिया । तद्नुसार, तारीख 31 जुलाई, 1998 को याची को छोड़ दिया गया और उसने तारीख 1 अगस्त 1998 को परीक्षक, स्थानीय लेखापरीक्षा विभाग, हिमाचल प्रदेश को अपना पदग्रहण रिपोर्ट (उपाबंध पी-4) प्रस्तुत किया । यह भी प्रकथन किया गया कि तारीख 12/13 अप्रैल, 1999 के पत्र (उपाबंध पी-5) द्वारा याची को यह स्पष्टीकरण देने के लिए एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया कि क्यों उसे आपराधिक आरोपों, जिस पर न्यायालय द्वारा उसे सिद्धदोष किया गया था, की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, सेवा से पदच्युत नहीं किया जाना चाहिए । याची ने तारीख 1 मई, 1999 का विस्तृत अभ्यावेदन (उपाबंध पी-6) प्रस्तुत करते हुए यह अभिकथित किया कि माननीय राज्यपाल द्वारा मंजूर क्षमादान के परिणामस्वरूप, उसकी दोषसिद्धि समाप्त हो गई और इसलिए, उस आधार पर उसे दंडित नहीं किया जा सकता है । यह कथन किया गया कि तारीख 2 जून, 1999 के आदेश (उपाबंध पी-7) द्वारा याची को भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए गृह विभाग ने तारीख 29 जुलाई, 1998 के पत्र द्वारा क्षमादान मंजूर की थी और भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 307, 324 तथा भारतीय आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 27 के अधीन उसे अधिनिर्णीत दोषसिद्धि और दंडादेश जिसे वह पहले ही भोग चुका था, अब भी अस्तित्व में है और उस अवचार जिसके कारण उस पर मुख्य शास्ति अधिरोपित की गई थी, लोक सेवा में उसे आगे बनाए रखना अवांछनीय हो गया है । परिणामतः, आक्षेपित आदेश द्वारा याची को तारीख 2 जून, 1999 से सेवा से पदच्युत कर दिया गया । याची ने वित्तीय आयुक्त-सह-सचिव (वित्त) को तारीख 24 जून, 1999 को एक पुनर्विलोकन आवेदन प्रस्तुत करते हुए, पदच्युति आदेश को वापस लेने की प्रार्थना की । प्रत्यर्थी ने तारीख 28 अप्रैल, 2000 के पत्र (उपाबंध पी-9) द्वारा यह सूचित किया कि पुनर्विलोकन आवेदन समुचित प्राधिकारी को अग्रेषित नहीं किया गया है, इसलिए, विभाग द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है । इसलिए,

पदच्युति के आदेश से व्यथित होकर याची ने वर्तमान रिट याचिका फाइल की । न्यायालय द्वारा रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अवधारण के लिए मुख्य प्रश्न, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 161 के अधीन माननीय राज्यपाल में निहित शक्ति और उसका प्रभाव है । यद्यपि, जैसी कि उपर्युक्त चर्चा की गई है माननीय न्यायमूर्ति कपाड़िया की मताभिव्यक्तियों को निर्दिष्ट करते हुए कि यह उस दोषसिद्धि के प्रभाव को समाप्त नहीं करती है, जो वर्तमान मामले में, सेशन न्यायाधीश के न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है और उच्च न्यायालय तथा माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा कायम रखा गया है । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उस याची की निर्दोषिता का प्रश्न ही नहीं उठता है जिसे दोषी अभिनिर्धारित किया गया है और क्षमादान मंजूर करते हुए उसके द्वारा भोगे नहीं गए दंडादेश के वास्तविक प्रभाव को माननीय राज्यपाल द्वारा परिहार नहीं किया गया है । इसलिए, माननीय उच्चतम न्यायालय की उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों के परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि जैसा कि उपर्युक्त मामले में समवर्ती राय देते हुए माननीय न्यायमूर्ति कपाडिया द्वारा मताभिव्यक्ति की गई है कि क्षमादान मंजूर करने को दोषसिद्धि के निर्णय के उलटने के अर्थ में नहीं माना जा सकता है बजाय इसके कि यह एक कार्यपालिका कार्रवाई है जिसके द्वारा अपराध के दंडादेश को कम या अपास्त किया जाता है । यह प्रतिवादी के दोषी या निर्दोषी होने का उल्लेख किए बिना दोषसिद्धि के प्रभाव को दूर करता है । यह भी मत व्यक्त किया गया कि यह अवधारित करने में नियंत्रणकारी कारक है कि क्या परमाधिकार की शक्ति का प्रयोग न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन है यह इसका स्रोत नहीं है अपितु यह इसकी विषयवस्तु है । इसलिए, यह स्पष्ट है कि वर्तमान मामले में, राज्यपाल के आदेश में क्षमादान मंजूर करते समय कोई विनिर्दिष्ट कारण नहीं दिया गया है । क्षमादान की शक्तियां माननीय राज्यपाल में निहित हैं किन्तु इनका प्रयोग राज्य सरकार की सिफारिशों तथा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों एवं उन विचारों पर भी, जिनका माननीय राज्यपाल के लिए क्षमादान मंजूर करते समय भार होता है, के आधार पर किया जाता है । इन विचारों में वे सभी अभिकथन भी सम्मिलित होते हैं कि याची अपराध में अन्तर्ग्रस्त था कि वह निर्दोष था, इसमें उसकी शारीरिक दशा, विकृत स्वास्थ्य या उसके कुटुम्ब की परिस्थितियां और कई अन्य कारण हो सकते हैं जिन पर इन शक्तियों का प्रयोग करते हुए माननीय राज्यपाल द्वारा विचार में लिया जा सकता है । यह न्यायालय शक्तियों की सीमा को परिसीमित करने के प्रश्न

पर विचार नहीं कर सकता है अपितु, इस प्रश्न पर विचार कर सकता है कि क्षमादान मंजूर करने का प्रभाव क्या है, क्या इससे याची द्वारा कारित अपराध समाप्त होता है और इसका प्रभाव क्या है । न्यायालय की राय में, वर्तमान परिस्थितियों में मात्र इंग्लिश न्यायालयों या यू. एस. न्यायालयों के निर्णयों पर ही एकमात्र रूप से अवलंब नहीं लिया जा सकता क्योंकि विधि परिवर्तनशील है और समय-समय पर परिवर्तित होती रहती है, विचार जो न्यायालय के लिए भारपूर्ण हैं वह यह है कि राज्यपाल द्वारा क्षमादान मंजूर करने का प्रभाव क्या है । क्षमादान मंजूर करने का प्रभाव यह है कि याची को उस पर अधिरोपित अनभोगे दंडादेश को आगे भोगने की आवश्यकता नहीं रह गई है । किन्तु, इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि यह अपराध के उस दंडादेश को भी अपास्त कर दिया है जो उसने किया है अपितु, याची उस दंडादेश को अब नहीं भोगेगा जो उन आदेशों को ध्यान में रखते हुए भोगा जाना था जिसे माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा भी पुष्ट कर दिया गया था । वस्तुतः, भोगे गए दंडादेश का ही क्षमादान के माध्यम से मुजरा किया गया है न कि याची द्वारा किए गए अपराध और उसके स्वाभाविक परिणाम का । न्यायालय की सुविचारित राय में, यह तथ्य कि याची को उस हत्या के लिए सिद्धदोष किया गया था जिसकी दोषसिद्धि माननीय उच्चतम न्यायालय तक कायम रखी गई थी और क्षमादान के परिणामस्वरूप उसे उस पर अधिरोपित शेष दंडादेश को भोगने की आवश्यकता नहीं रह गई है किन्तु इससे उस पर अधिरोपित दोषसिद्धि को अपास्त करने पर प्रभाव नहीं पड़ता है और जो उच्चतर न्यायालय तक कायम रखा गया है । इसलिए, यह विभाग द्वारा अपने अधिकार के भीतर है कि वह फायदों को मंजूर नहीं करे क्योंकि वह अपराध के लिए सिद्धदोष किया गया था और उपर्युक्त उल्लिखित रूप से भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन दंड के अलावा अन्य अपराधों के लिए दंडादेशों को पहले ही भोग चुका था । इसलिए, न्यायालय की राय में, आक्षेपित आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य नहीं है । (पैरा 14, 32, 33, 34 और 35)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2011]	2011 की सिविल अपील सं. 2058 : **नारायण दत्त और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य और एक अन्य;**	28

[2010]	(2010) 4 एस. सी. सी. 216 : **हरियाणा राज्य और अन्य** बनाम **जगदीश** ;	26
[2000]	ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 1702 : **सतपाल और एक अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य और अन्य** ;	25
[1998]	(1998) 4 एस. सी. सी. 75 : **स्वर्ण सिंह** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य** ;	27
[1961]	ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 334 : **शरत चन्द्र राभा और अन्य** बनाम **खजेन्द्र नाथ और अन्य** ;	18
[1961]	ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 112 : **के. एम. नानावती** बनाम **बाम्बे राज्य** ;	20
[1960]	ए. आई. आर. 1960 आंध्र प्रदेश 259 : **उप-पुलिस महानिरीक्षक, नार्थ रेंजर, वाल्टियर और एक अन्य** बनाम **राजाराम और एक अन्य** ;	10
[1877]	(1877) 24 ला एडिसन 442 : **नॉट** बनाम **यूनाइटेड स्टेट्स** ।	31

प्रारम्भिक (सिविल) अधिकारिता : 2008 की सिविल रिट याचिका (टी.) सं. 6713.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री दिलीप शर्मा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से श्री अनिल जायसवाल, उप-महाधिवक्ता

न्यायमूर्ति वी. के. आहूजा – याची द्वारा वर्तमान रिट याचिका प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 19 के अधीन निम्नलिखित अनुतोषों का दावा करते हुए फाइल की गई है :–

"(i) कि तारीख 2 जून, 1999 के आक्षेपित आदेश उपाबंध ए-7 को अभिखंडित और अपास्त किया जाए और आवेदक को सभी पारिणामिक फायदों जिनमें वेतन बकाया तथा ज्येष्ठता और आगे

प्रोन्नति आदि सम्मिलित है, के सहित सेवा में पुनः बहाल होने का हकदार अभिनिर्धारित किया जाए ।

(ii) कि तारीख 18 नवम्बर, 1988 से जब आवेदक को निलम्बित किया गया था, उसके पुनः बहाल होने की तारीख तक सभी पारिणामिक फायदों सहित सभी आशयों और प्रयोजनों के लिए ड्यूटी पर माने जाने का निर्देश दिया जाए ।"

2. आवेदन, हिमाचल प्रदेश राज्य प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष लम्बित था और अधिकरण की समाप्ति पर उसे इस न्यायालय में अन्तरित कर दिया गया और उसे सिविल रिट याचिका के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया । याचिका में प्रत्यर्थी को नोटिस जारी किया गया और उसने उसका उत्तर फाइल किया ।

3. मैंने, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और मामले के अभिलेखों का परिशीलन किया ।

4. रिट याचिका फाइल करने के मुख्य तथ्य यह हैं कि याची ने तारीख 9 जून, 1977 को स्थानीय लेखापरीक्षा विभाग में लिपिक के रूप में पद ग्रहण किया था । उसके पश्चात् उसे तारीख 27 फरवरी, 1978 को कनिष्ठ लेखापरीक्षक के रूप में प्रोन्नति दी गई । तारीख 18 नवम्बर, 1988 को याची भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302, 307 और 324 के अधीन रजिस्ट्रीकृत प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के संबंध में गिरफ्तार हुआ । इसके पश्चात् तारीख 1 फरवरी, 1989 को उसे तारीख 18 नवम्बर, 1988 के तत्काल प्रभाव से निलम्बित कर दिया गया ।

5. यह भी प्रकथन किया गया कि तारीख 19 अक्तूबर, 1992 को सेशन न्यायाधीश, ऊना के निर्णय द्वारा याची को सिद्धदोष किया गया । विद्वान् सेशन न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध याची द्वारा प्रस्तुत अपील को इस न्यायालय ने तारीख 25 जुलाई, 1994 के निर्णय द्वारा खारिज कर दिया जिसके विरुद्ध माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील प्रस्तुत की गई जिसे भी तारीख 26 सितम्बर, 1996 को खारिज कर दिया गया । यह भी प्रकथन किया गया कि संयुक्त सचिव (गृह), हिमाचल प्रदेश सरकार ने तारीख 29 जुलाई, 1998 के पत्र (उपाबंध पी-2) द्वारा अपर महानिदेशक (जेल), हिमाचल प्रदेश को हिमाचल प्रदेश के माननीय राज्यपाल के विनिश्चय को सूचित किया जिसके द्वारा माननीय राज्यपाल ने संविधान, 1950 के अनुच्छेद 161 के अधीन याची को क्षमा दान मंजूर कर

लिया था और उसे तुरन्त छोड़े जाने का निर्देश दिया था । इसके पश्चात्, अपर महानिदेशक, जेल, हिमाचल प्रदेश ने तारीख 31 जुलाई, 1998 के पत्र (उपाबंध पी-3) द्वारा अधीक्षक, उप-जेल, शिमला को पत्र लिखते हुए याची को तुरन्त छोड़े जाने का निदेश दिया । तद्नुसार, तारीख 31 जुलाई, 1998 को याची को छोड़ दिया गया और उसने तारीख 1 अगस्त, 1998 को परीक्षक, स्थानीय लेखापरीक्षा विभाग, हिमाचल प्रदेश को अपना पदग्रहण रिपोर्ट (उपाबंध पी-4) प्रस्तुत किया ।

6. यह भी प्रकथन किया गया कि तारीख 12/13 अप्रैल, 1999 के पत्र (उपाबंध पी-5) द्वारा याची को यह स्पष्टीकरण देने के लिए एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया कि क्यों उसे आपराधिक आरोपों, जिस पर न्यायालय द्वारा उसे सिद्धदोष किया गया था, की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, सेवा से पदच्युत नहीं किया जाना चाहिए । याची ने तारीख 1 मई, 1999 का विस्तृत अभ्यावेदन (उपाबंध पी-6) प्रस्तुत करते हुए यह अभिकथित किया कि माननीय राज्यपाल द्वारा मंजूर क्षमा दान के परिणामस्वरूप, उसकी दोषसिद्धि समाप्त हो गई और इसलिए, उस आधार पर उसे दंडित नहीं किया जा सकता है । यह कथन किया गया कि तारीख 2 जून, 1999 के आदेश (उपाबंध पी-7) द्वारा याची को भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए गृह विभाग ने तारीख 29 जुलाई, 1998 के पत्र द्वारा क्षमा दान मंजूर की थी और भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 307, 324 तथा भारतीय आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 27 के अधीन उसे अधिनिर्णीत दोषसिद्धि और दंडादेश जिसे वह पहले ही भोग चुका था, अब भी अस्तित्व में है और उस अवचार जिसके कारण उस पर मुख्य शास्ति अधिरोपित की गई थी, लोक सेवा में उसे आगे बनाए रखना अवांछनीय हो गया है । परिणामतः, आक्षेपित आदेश द्वारा याची को तारीख 2 जून, 1999 से सेवा से पदच्युत कर दिया गया ।

7. याची ने वित्तीय आयुक्त-सह-सचिव (वित्त) को तारीख 24 जून, 1999 को एक पुनर्विलोकन आवेदन प्रस्तुत करते हुए, पदच्युति आदेश को वापस लेने की प्रार्थना की । प्रत्यर्थी ने तारीख 28 अप्रैल, 2000 के पत्र (उपाबंध पी-9) द्वारा यह सूचित किया कि पुनर्विलोकन आवेदन समुचित प्राधिकारी को अग्रेषित नहीं किया गया है, इसलिए, विभाग द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है । इसलिए, पदच्युति के आक्षेपित आदेश से व्यथित होकर, याची ने मुख्यतः निम्नलिखित आधारों पर वर्तमान याचिका

फाइल की :–

"(क) यह सुस्थिर है कि माननीय राज्यपाल द्वारा जब एक बार क्षमा दान की शक्ति का प्रयोग कर लिया जाता है तो सिद्धदोष व्यक्ति न केवल उस पर अधिरोपित दंड से मुक्त हो जाता है अपितु सभी दांडिक परिणामों और अनर्हताओं से भी मुक्त हो जाता है जो कि उसके व्यवसाय से अहकदार बनाती हैं जो कि दोषसिद्धि की समवर्ती हैं । क्षमा दान का प्रभाव यह होता है कि यह अपराध के धब्बे को मिटा देती है, इसके पश्चात्, उसके विधिक अधिकार का प्रत्याख्यान करने से उसे नहीं रोका जा सकता है । स्वयं दोषसिद्धि को समाप्त करने के लिए क्षमा दान एक सार है ।

(ख) कि माननीय राज्यपाल द्वारा जब एक बार अपीलार्थी की क्षमा दान मंजूर कर ली जाती है तो दोषसिद्धि समाप्त हो जाती है और परिणामतः प्रत्यर्थी विभाग उसके उस अवचार को संदर्भित करते हुए आक्षेपित पदच्युति का आदेश पारित नहीं कर सकता है जिसके कारण उसे आक्षेपित दोषसिद्धि की गई थी । इस प्रकार, आक्षेपित पदच्युति का आदेश बिना किसी आधार के है और अभिखंडित तथा अपास्त किए जाने योग्य है ।"

8. यह भी अभिवाक् किया गया कि प्रत्यर्थी विभाग द्वारा याची को जारी कारण बताओ नोटिस इस धारणा पर है कि संपूर्ण दोषसिद्धि अस्तित्व में है और अतएव, उस आधार पर सेवा से पदच्युति की शास्ति याची पर अधिरोपित की जानी प्रस्थापित है । कारण बताओ नोटिस के उत्तर में यह इंगित किया गया कि उसे माननीय राज्यपाल द्वारा क्षमा दान मंजूर कर ली गई है और इस प्रकार, दोषसिद्धि अस्तित्व में नहीं रह गई है । तथापि, उसने यह अभिकथित किया कि प्रत्यर्थी विभाग ने अपना आधार बदल लिया है और आक्षेपित आदेश (उपाबंध पी-7) में यह कथित किया कि उसे मात्र भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन ही क्षमा दान मंजूर की गई है और भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 307, 324 के अधीन तथा भारतीय आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 27 के अधीन दोषसिद्धि, जिसके लिए वह कारावास पहले ही भोग चुका है, अब भी अस्तित्व में है । इस प्रकार, यह अभिकथित किया गया कि इस त्रुटिपूर्ण पहुंच के कारण याची के विरुद्ध आक्षेपित पदच्युति का आदेश पारित किया गया था ।

9. प्रत्यर्थी द्वारा फाइल उत्तर में, तथ्य, जैसा उपर्युक्त उल्लिखित किए गए हैं, विवादित नहीं किए गए हैं सिवाय उत्तर के पैरा 4 और पैरा 6 में लिए गए इस अभिवाक् के कि भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 307, 324 तथा भारतीय आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 27 के अधीन याची को अधिनिर्णीत दोषसिद्धि और दंडादेश अभी भी अस्तित्व में हैं, जिसे याची पहले ही भोग चुका है । यह अभिवाक् किया गया कि माननीय राज्यपाल द्वारा याची को मात्र आजीवन कारावास से ही क्षमा दान मंजूर की गई है न कि उन सभी अपराधों के लिए जिसके लिए वह दंडादेश पहले ही भोग चुका है ।

10. याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह निवेदन किया गया कि माननीय राज्यपाल द्वारा पारित क्षमा दान आदेश से याची पर अधिरोपित दंड समाप्त हो गया है और इस प्रकार याची को उस पर अधिरोपित दोषसिद्धि को ध्यान में रखते हुए पदच्युत नहीं किया जा सकता है । याची के विद्वान् काउंसेल ने अपने निवेदनों के समर्थन में **उप-पुलिस महानिरीक्षक, नार्थ रेंजर, वाल्टियर और एक अन्य** बनाम **राजाराम और एक अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया ।

11. मैं, याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा उद्धृत उपर्युक्त विनिश्चय को निर्दिष्ट करने के पूर्व, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 72 और 161 को प्रस्तुत करना चाहता हूं जिसकी उपर्युक्त मामले में चर्चा की जानी है । अनुच्छेद 72 निम्नलिखित है :–

> "72. **क्षमा दान आदि की और कुछ मामलों में दंडादेश के निलंबन, परिहार या लघूकरण की राष्ट्रपति की शक्ति** – (1) राष्ट्रपति को, किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराए गए किसी व्यक्ति के दंड को क्षमा दान, उसका प्रविलंबन, विराम या परिहार करने की अथवा दंडादेश के निलंबन, परिहार या लघूकरण की –
>
> (क) उन सभी मामलों में, जिनमें दंड या दंडादेश सेना न्यायालय ने दिया है,
>
> (ख) उन सभी मामलों में, जिनमें दंड या दंडादेश ऐसे विषय संबंधी किसी विधि के विरुद्ध अपराध के लिए दिया गया है जिस विषय तक संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है,

---

[1] ए. आई. आर. 1960 आंध्र प्रदेश 259.

(ग) उन सभी मामलों में, जिनमें दंडादेश, मृत्यु दंडादेश है,

शक्ति होगी ।

(2) खंड (1) के उपखंड (क) की कोई बात संघ के सशस्त्र बलों के किसी आफिसर की सेना न्यायालय द्वारा पारित दंडादेश के निलंबन, परिहार या लघूकरण की विधि द्वारा प्रदत्त शक्ति पर प्रभाव नहीं डालेगी ।

(3) खंड (1) के उपखंड (ग) की कोई बात तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रयोक्तव्य मृत्यु दंडादेश के निलंबन, परिहार या लघूकरण की शक्ति पर प्रभाव नहीं डालेगी ।"

संविधान, 1950 का अनुच्छेद 161 निम्नलिखित है –

"161. **क्षमा दान आदि की और कुछ मामलों में दंडादेश के निलंबन, परिहार या लघूकरण की राज्यपाल की शक्ति** – किसी राज्य के राज्यपाल को उस विषय संबंधी, जिस विषय पर उस राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है, किसी विधि के विरुद्ध किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराए गए किसी व्यक्ति के दंड को क्षमा दान, उसका प्रविलंबन, विराम या परिहार करने की अथवा दंडादेश के निलंबन, परिहार या लघूकरण की शक्ति होगी ।"

12. दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 401 और 402 के प्रति भी निर्देश किया जा सकता है : –

"401. **दंडादेशों का निलम्बन या परिहार करने की शक्ति** – (1) जब किसी व्यक्ति को किसी अपराध के लिए दण्डादेश दिया जाता है तब समुचित सरकार किसी समय, शर्तों के बिना या ऐसी शर्तों पर जिन्हें दंडादिष्ट व्यक्ति स्वीकार करे उसके दण्डादेश के निष्पादन का निलंबन या जो दंडादेश उसे दिया जाता है उसका पूरे का या उसके किसी भाग का परिहार कर सकती है ।

(2) जब कभी समुचित सरकार से दंडादेश के निलम्बन या परिहार के लिए आवेदन किया जाता है तब समुचित सरकार उस न्यायालय के पीठासीन न्यायाधीश से, जिसके समक्ष दोषसिद्धि हुई थी या जिसके द्वारा उसकी पुष्टि की गई थी, अपेक्षा कर सकेगी कि वह इस बारे में कि आवेदन मंजूर किया जाए या नामंजूर किया जाए,

अपनी राय ऐसी राय के लिए अपने कारणों सहित कथित करे और अपनी राय के कथन के साथ विचारण के अभिलेख की या उसके ऐसे अभिलेख की, जैसा विद्यमान हो, प्रमाणित प्रतिलिपि भी भेजे ।

(3) यदि कोई शर्त, जिस पर दंडादेश का निलम्बन या परिहार किया गया है, समुचित सरकार की राय में पूरी नहीं हुई है तो समुचित सरकार निलम्बन या परिहार को रद्द कर सकती है और तब, यदि वह व्यक्ति, जिसके पक्ष में दंडादेश का निलम्बन या परिहार किया गया था, मुक्त है तो वह किसी पुलिस अधिकारी द्वारा वारण्ट के बिना गिरफ्तार किया जा सकता है और दंडादेश के अनवसित भाग को भोगने के लिए प्रतिप्रेषित किया जा सकता है ।

(4) वह शर्त, जिस पर दंडादेश का निलम्बन या परिहार इस धारा के अधीन किया जाए, ऐसी हो सकती है जो उस व्यक्ति द्वारा, जिसके पक्ष में दंडादेश का निलम्बन या परिहार किया जाए, पूरी की जाने वाली हो या ऐसी हो सकती है जो उसकी इच्छा पर आश्रित न हो ।

(4क) ऊपर की उपधाराओं के उपबन्ध दंड न्यायालय द्वारा इस संहिता की या किसी अन्य विधि की किसी धारा के अधीन पारित ऐसे आदेश को भी लागू होंगे जो किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता को निर्बंधित करता है या उस पर या उसकी सम्पत्ति पर कोई दायित्व अधिरोपित करता है ।

(6) समुचित सरकार उन अर्जियों पर जो विचार किए जाने के लिए पेश की जाएं, दंडादेशों के निलम्बन के बारे में और उन शर्तों के बारे में साधारण नियमों या विशेष आदेशों द्वारा निदेश दे सकती है :

परन्तु अठारह वर्ष से अधिक की आयु के किसी पुरुष के विरुद्ध किसी दंडादेश की दशा में (जो जुर्माने के दंडादेश से भिन्न है) दंडादिष्ट व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दी गई कोई ऐसी अर्जी तब तक ग्रहण नहीं की जाएगी जब तक दंडादिष्ट व्यक्ति जेल में न हो, तथा –

(क) जहां ऐसी अर्जी दंडादिष्ट व्यक्ति द्वारा दी जाती है वहां जब तक वह जेल के भारसाधक अधिकारी की मार्फत उपस्थित न की जाए; अथवा

(ख) जहां ऐसी अर्जी किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दी जाती है वहां जब तक उसमें यह घोषणा न हो कि दंडादिष्ट व्यक्ति जेल में है ।

402. **दंडादेश के लघूकरण की शक्ति** – (1) समुचित सरकार दंडादिष्ट व्यक्ति की सम्मति के बिना इसके पश्चात् किसी अन्य उल्लिखित के लिए निम्नलिखित दंडादेशों में से किसी एक का लघूकरण कर सकती है –

मृत्यु, आजीवन कारावास, किसी ऐसी अनधिक अवधि के लिए कठोर कारावास, जिसके लिए वह दंडादिष्ट किया जा सकता है, सादा कारावास और जुर्माना ।

(2) इस धारा की कोई भी बात भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 54 या धारा 55 के उपबंधों को प्रभावित नहीं करेगी ।

(3) इस धारा में और धारा 401 में अभिव्यक्त 'समुचित सरकार' से, –

(क) उन दशाओं में जिनमें दंडादेश ऐसे विषय से संबद्ध किसी विधि के विरुद्ध अपराध के लिए है या उपधारा (4क) में निर्दिष्ट आदेश ऐसे विषय से संबद्ध किसी विधि के अधीन पारित किया गया है, जिस विषय पर संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है, केन्द्रीय सरकार से अभिप्रेत है, और

(ख) अन्य दशाओं में, उस राज्य की सरकार अभिप्रेत है जिसमें अपराधी दंडादिष्ट किया गया है या उक्त आदेश पारित किया गया है ।"

13. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि संविधान, 1950 के अनुच्छेद 161 के अधीन माननीय राज्यपाल द्वारा प्रयोग की गई शक्ति तारीख 29 जुलाई, 1998 के उपाबंध पी-2 आदेश से स्पष्ट होगी जिसे निम्नलिखित प्रस्तुत किया जा सकता है :–

"मैं, उपर्युक्त उद्धृत विषय पर आपके पत्र सं. 4-1/90-जेल-II, तारीख 7 अगस्त, 1997 के प्रति निर्देश देता हूं और यह कथन करता हूं कि माननीय राज्यपाल, हिमाचल प्रदेश ने संविधान, 1950 के अनुच्छेद 161 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, श्री कुलदीप कुमार, आजीवन सिद्धदोष पुत्र श्री प्रीति चन्द, ग्राम दुसारा, पुलिस

थाना अम्ब, जिला ऊना (हिमाचल प्रदेश) को क्षमादान मंजूर करते हैं और तुरन्त छोड़े जाने का आदेश देते हैं ।"

14. इसलिए, अवधारण के लिए मुख्य प्रश्न, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 161 के अधीन माननीय राज्यपाल में निहित शक्ति और उसका प्रभाव है । उपर्युक्त विनिश्चय को आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की विशेष पीठ ने संविधान, 1950 के अनुच्छेद 72 और 161 के उपबंधों पर विचार किया तथा दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 401 और 402 के प्रति भी निर्देश किया ।

15. उपर्युक्त मामले के संक्षिप्त तथ्यों का उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि पुलिस उप-निरीक्षक और कुछ कांस्टेबलों (प्रत्यर्थियों) को सेवा से पदच्युत कर दिया गया था क्योंकि वे कतिपय अपराधों के लिए सिद्धदोष किए गए थे । उन्होंने उच्च न्यायालय के समक्ष अपनी दोषसिद्धि और दंडादेशों के विरुद्ध अपीलें फाइल कीं । अपीलों के लम्बित रहने के दौरान आंध्र प्रदेश राज्य गठित हुआ जिस पर नए राज्य की सरकार ने अपने आदेश द्वारा सभी कैदियों को आम माफी देने की घोषणा की । प्रत्यर्थियो ने जेल से छूटने के पश्चात् अपनी अपीलें वापस ले लीं और उन पर दवाब नहीं डाला । इसके तत्काल पश्चात् प्रत्यर्थियों ने अपनी तैनाती के लिए संबंधित प्राधिकारियों से कहा । उन्हें यह बताया गया कि वे पहले से ही सेवा से पदच्युत किए जा चुके हैं इसलिए, उन्हें पदच्युति आदेशों को अभिखंडित कराने के लिए संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका फाइल करनी चाहिए । विद्वान् एकल न्यायाधीश जिन्होंने रिट याचिका की सुनवाई की, के समक्ष यह दलील दी गई कि तारीख 12 जनवरी, 1954 की अधिसूचना का प्रभाव अपराधों के परिणामों से अपराधियों को मुक्त करना है और यह कि अपराधी सभी अनर्हताओं से मुक्त हो गए हैं जो उनकी दोषसिद्धि से जुड़े थे । प्रत्यर्थियों की ओर से एक अन्य दलील यह दी गई कि उच्च न्यायालय में अपीलें लम्बित रहने के दौरान दिए गए पदच्युति आदेश अवैध हैं क्योंकि वे पुलिस स्टैंडिंग आर्डर सं. 77 का अतिक्रमण करते हैं । इन दोनों दलीलों को प्रभावी तरीके से विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष उठाया गया जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने आक्षेपित आदेशों को अभिखंडित कर दिया । उस आदेश से व्यथित होकर आंध्र प्रदेश राज्य ने इन अपीलों को प्रस्तुत किया जिनकी सुनवाई माननीय तीन न्यायाधीशों से गठित विशेष न्यायपीठ द्वारा की गई ।

16. पैरा 11, 14, 15, 16 और 17 में की गई मताभिव्यक्तियां

सुसंगत हैं और निम्नलिखित प्रस्तुत हैं :–

"(11) इसलिए, यह सुस्थिर है कि जब एक सिद्धदोष व्यक्ति को क्षमादान दे दी जाती है तो वह दोनों उस पर अधिरोपित दंड के साथ ही सभी दांडिक परिणामों से मुक्त हो जाता है और यह कि उसके व्यवसाय से होने वाले अहकदार के रूप में ऐसी अनर्हताओं से भी मुक्त हो जाता है और दोषसिद्धि के सहवर्ती भी समाप्त हो जाते हैं । उसके बाद, यह स्थिति आती है जब विद्रोह के तत्काल पश्चात् 1868 में संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति द्वारा जारी उद्घोषणा के समान वर्तमान अधिसूचना उद्भूत होती है ।

(14) इसका परिशीलन संविधान, 1950 के अनुच्छेद 72 के पैराग्राफ 2 के साथ किए जाने पर यह दर्शित होता है कि राज्यपाल, जो राज्य की कार्यपालिका शक्ति तक विस्तारित मामलों के संबंध में है, को राष्ट्रपति के ही समान शक्तियां हैं । यह प्रतीत होता है कि ये दोनों उपबंध राज्यपाल को किसी विधि के विरुद्ध किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराए गए किसी व्यक्ति के दंड को क्षमा, उसका प्रविलम्बन, विराम या परिहार करने की अथवा दंडादेश में निलम्बन, परिहार या लघूकरण करने की सुभिन्न शक्तियां देते हैं और प्रत्येक का सुभिन्न अर्थ है । संविधान, 1950 का अनुच्छेद 72 और 161 इंग्लैंड के राजा द्वारा धारित संप्रभु शक्तियों को प्रस्तुत करता है । ऐसी ही शक्तियां दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 के उपबंधों अर्थात् धारा 401 और 402 में अन्तर्विष्ट हैं जिन्हें वर्तमान मामले में प्रकथित करना होगा ।

(15) संविधान, 1950 के अनुच्छेद 161 से यह प्रकट होता है कि क्षमादान मंजूर करना सम्पूर्ण दंडादेश या उसके किसी भाग के परिहार के समान नहीं है । दो विभिन्न चीजें हैं जो उनके प्रवर्तन को भिन्न करते हैं । जैसा कि पहले ही इंगित किया जा चुका है समुचित सरकार को दंडादेश का परिहार मंजूर करने की शक्ति दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 401 और 402 से प्राप्त हुई है ..... ।

(16) अब हम इस बात का अवधारण करते हैं कि क्या आंध्र प्रदेश राज्य के राज्यपाल द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 अथवा अनुच्छेद 161 के अधीन सुसंगत उपबंधों के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग किया गया है । अविवादित रूप से संविधान, 1950 का

अनुच्छेद 161 राज्यपाल को बिना शर्त और सम्पूर्ण क्षमादान मंजूर करने के लिए व्यापक रूप से समर्थ बनाता है जबकि धारा 401 ऐसी किसी भी चीज को करने के लिए उसे सशक्त नहीं करती है । इस समस्या का समाधान करने के लिए हमें अधिसूचना के निबंधनों का परिशीलन करना चाहिए ।

(17) यह सत्य है कि शब्द 'आम माफी' उस आदेश की प्रस्तावना में विवक्षित है वह अभिव्यक्ति इस तर्क का कुछ समर्थन कर सकती है कि साधारण क्षमादान में क्या मंजूर किया जा सकता है, क्योंकि शब्द 'आम माफी' का अर्थ भी साधारण क्षमादान ही है किन्तु उससे हमें अधिसूचना के ठीक-ठीक क्षेत्र को विनिश्चित करने में अधिक मार्गदर्शन नहीं मिलता है । संबंधित अधिसूचना से यह स्पष्ट है कि आंध्र प्रदेश राज्य के विभिन्न जेलों के कैदियों को आंध्र प्रदेश राज्य की स्थापना दिवस समारोह के समय छोड़ा जाता है । पश्चात्वर्ती आदेश में यह स्पष्ट किया गया है कि परिहार क्या है और अनवसित भाग क्या है । फिर भी द्वितीय आदेश अपने आप में पूर्ण है, 12 जनवरी, 1954 की अधिसूचना सुस्पष्ट है । इसका प्रयोजन उन कैदियों को छोड़ना था जो जेल से मुक्त होने वाले थे ।"

17. माननीय विशेष न्यायपीठ द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि यह कहना कठिन है कि आम माफी मंजूर करने के परिणामस्वरूप पदच्युति का आदेश अकृत और शून्य हो गया है । यदि अधिकारी अपनी अपील में सफल हो जाता है तो वह उस प्रास्थिति में वापस आ जाएगा जिसमें वह पदच्युति आदेश पारित करने के पूर्व था । अंततः, निर्णय के पैरा 25 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

"(25) यह उपधारणा कि स्टैंडिंग आर्डर का प्रभाव अंशदायी रूप से हुआ है, हम यह नहीं सोचते हैं कि यह न्यायालय संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए उन आदेशों में हस्तक्षेप करने में न्यायोचित होगा । यह उल्लिखित किया जाना चाहिए कि अपीलें वापस ले ली गई थीं क्योंकि रिट याचिकाओं को फाइल करने के पूर्व कोई आदेश पारित नहीं किया गया था और इसलिए, वे खारिज कर दी गई थीं । यह सिद्ध किया गया है कि दोषसिद्धि अंतिम रूप से अभिनिर्धारित की गई थीं, इसलिए यद्यपि अनुतोष मंजूर करने के लिए कहा गया था और प्रत्यर्थी अपनी पुरानी प्रास्थिति में वापस हो गए थे फिर भी अगले कदम के रूप में वे

पदच्युत किए जा सकते हैं । इस प्रकार, यह मात्र एक औपचारिकता थी जिसमें सारतः कोई अनुतोष नहीं दिया जा सकता था । यह न्यायालय स्वयमेव को संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन आदेश पारित करने में मूर्ख नहीं बना सकता था जो अप्रभावी हैं । इस प्रकार, यह तर्क भी कायम रखे जाने योग्य नहीं है और इससे इनकार किया जाता है ।"

परिणामतः, सरकार द्वारा फाइल अपीलें मंजूर कर ली गई थीं और रिट याचिकाएं खारिज कर दी गई थीं । उपर्युक्त मामले को विनिश्चित करते हुए, माननीय न्यायाधीशों ने उस माफी के अधीन मंजूर क्षमादान को भी निर्दिष्ट किया था जो अमेरिकन न्यायालयों द्वारा भी निरन्तर विचार किए जाने की विषयवस्तु थीं । संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यायालयों द्वारा एक मामले में दिए गए विनिश्चय के प्रति भी निर्देश किया गया है ।

18. **शरत चन्द्र राभा और अन्य** बनाम **खजेन्द्र नाथ और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का भी अवलंब लिया गया । माननीय न्यायाधीशों द्वारा विचार किए जाने वाला प्रश्न निम्नलिखित था :–

"दो वर्षों से अधिक के कठोर कारावास से सिद्धदोष और दंडादिष्ट व्यक्ति धारा 7(ख) के अधीन अनर्ह है जब तक कि जेल से उसे छोड़े जाने के पश्चात् पांच वर्ष व्यतीत नहीं हो गए हैं तथा ऐसी अनर्हता को निर्वाचन आयुक्त द्वारा समाप्त नहीं कर दिए गए हैं । दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 401 के अधीन उसके दंडादेश का परिहार और वास्तविक कारावास की दो वर्षों के पूर्व जेल से उसको छोड़े जाने से दो वर्षों से कम की अवधि में से उसका दंडादेश नहीं घटेगा और वह धारा 7(ख) के अधीन अनर्हता से नहीं बचेगा .....।"

19. उपर्युक्त विनिश्चय के पैरा 4 में निम्नलिखित मत भी व्यक्त किया गया था :–

"परिहार का कोई आदेश न्यायालय के आदेश में किसी तरह से हस्तक्षेप नहीं करता है, यह मात्र न्यायालय द्वारा पारित दंडादेश के निष्पादन को प्रभावित करता है और सिद्धदोष व्यक्ति को न्यायालय द्वारा अधिरोपित पूर्ण कारावास की अवधि भोगने के दायित्व से मुक्त करता है, यद्यपि कि न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि और दंडादेश का

---

[1] ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 334.

आदेश अब भी वैसा ही है जैसा यह था । परिहार मंजूर करने की शक्ति, कार्यपालिका शक्ति और यह उसे प्रभावित नहीं कर सकता है जो अपीलीय न्यायालय या पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश द्वारा विचारण न्यायालय द्वारा पारित दंडादेश को घटाते हुए पारित किया गया है और अपीली न्यायालय या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णय देते हुए दंडादेश को घटाते हुए अपना आदेश प्रतिस्थापित किया गया है ।"

20. दूसरी ओर, विद्वान् उप-महाधिवक्ता ने **के. एम. नानावती** बनाम **बाम्बे राज्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया । वर्तमान चर्चा के लिए उस मामले के आवश्यक संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याची जो भारतीय नौसेना में सेवारत था, भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन हत्या के आरोप के संबंध में गिरफ्तार हुआ था । इसी दौरान, उसका विचारण सेशन न्यायाधीश, ग्रेटर बाम्बे के समक्ष हुआ था । एक ज्यूरी द्वारा विचारण किया गया था । ज्यूरी ने एक के मुकाबले आठ के बहुमत से उसे दोषी नहीं अभिनिर्धारित किया । विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने ज्यूरी के अधिमत से असहमति जताते हुए, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 307 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष मामले को निर्देश किया । बाम्बे उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ द्वारा निर्देश की सुनवाई की गई । उच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन याची का निर्देश और दोषसिद्धि स्वीकार कर ली और तारीख 11 मार्च, 1960 के निर्णय द्वारा उसे आजीवन कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया । उसी दिन बाम्बे के राज्यपाल ने निम्नलिखित आदेश पारित किया :–

"संविधान, 1950 के अनुच्छेद 161 के द्वारा मुझे प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, मैं, श्रीप्रकाश, राज्यपाल बाम्बे, तद्द्वारा, कमांडर के. एम. नानावती को 1959 के चतुर्थ सेशन के सेशन मामला सं. 22 में बाम्बे उच्च न्यायालय द्वारा पारित दंडादेश को तब तक के लिए निलम्बित करता हूं जब तक कि उसके द्वारा अपनी दोषसिद्धि और दंडादेश के विरुद्ध माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष फाइल की जाने के लिए आशयित अपील का निपटारा नहीं हो जाता है और इन शर्तों के अध्यधीन भी कि वह आई. एन. एस. कुंजली में नौसैनिक जेल अभिरक्षा में निरुद्ध रहेगा ।"

---

[1] ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 112.

21. याची ने बाम्बे उच्च न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन याची की दोषसिद्धि पर पारित दंडादेश तथा आजीवन कारावास के लिए की गई दोषसिद्धि के विरुद्ध विशेष इजाजत याचिका फाइल की । विशेष इजाजत की याचिका के साथ याची द्वारा यह प्रार्थना करते हुए एक आवेदन भी फाइल किया गया कि उसे न्यायालय नियम के आदेश XXI के नियम 5 के अधीन अभ्यर्पण करने से छूट प्रदान की जाए । उसने यह अभिवाक् लिया कि बाम्बे के राज्यपाल द्वारा पारित आदेश के परिणामस्वरूप, उसे इस न्यायालय के सुसंगत नियमों का अनुपालन करने से छूट मिल सकती है । मामला संविधान, 1950 के अनुच्छेद 161 के अधीन राज्यपाल को प्रदत्त शक्तियों के क्षेत्र और विस्तार से संबंधित है और मामला, माननीय उच्चतम न्यायाल्य के सांविधानिक न्यायपीठ को निर्दिष्ट कर दिया गया । माननीय उच्चतम न्यायालय का बहुमत विनिश्चय निम्नलिखित था :–

> "अनुच्छेद 161 का क्षेत्र अनुच्छेद 142 के मुकाबले अत्यधिक व्यापक है और इसका मात्र अति संकुचित क्षेत्र यह है कि अनुच्छेद 161 में अन्तर्विष्ट शक्ति में अनुच्छेद 142 भी समाविष्ट अर्थात् उस अवधि के दौरान दंडादेश को निलम्बित करने की शक्ति जब मामला माननीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीन है । इसलिए, सुसंगत अर्थान्वयन के सिद्धांत और दोनों शक्तियों के बीच विरोधाभास से बचने के लिए यह अभिनिर्धारित करना आवश्यक है कि अनुच्छेद 161 उस अवधि के दौरान दंडादेश के निलम्बन पर विचार नहीं करती है । जब अनुच्छेद 142 का प्रवर्तन होता है और मामला माननीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीन है ।"

22. पैरा 21 में की गई मताभिव्यक्तियां भी सुसंगत हैं और निम्नलिखित प्रस्तुत हैं :–

> "राज्यपाल के लिए यह विकल्प भी खुला है कि वह माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष मामला लम्बित रहने के दौरान किसी भी समय उस अधिकारिता का प्रयोग करते हुए पूर्ण क्षमा मंजूर कर सकता है जिसे साधारणतया 'दया अधिकारिता' कहा जाता है । ऐसी क्षमा के पश्चात् न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किया गया अभियुक्त व्यक्ति अपने सभी दंडों अथवा दांडिक अपराधों के लिए दोषसिद्धि से संबद्ध अनर्हता से भी पूर्णतया मुक्त हो जाता है । ऐसी शक्ति सारतः कार्यपालिका के प्रमुख में निहित होती है, क्योंकि न्यायपालिका के

पास ऐसी कोई 'दया अधिकारिता' नहीं है । किन्तु राज्यपाल उस अवधि के दौरान दंडादेश का निलम्बन करने की अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है जब मामला माननीय उच्चतम न्यायालय में लम्बित है ।"

23. यह भी मत व्यक्त किया गया कि अनुच्छेद 142 के अन्तर्गत क्या समाविष्ट है और अनुच्छेद 161 के अन्तर्गत क्या समाविष्ट नहीं है और इसी प्रकार, धारा 426 में क्या समाविष्ट है और धारा 401 के अन्तर्गत क्या समाविष्ट नहीं है । इसका निर्वचन करने पर, क्षमा प्रदान करने की राज्य की संप्रभु शक्ति और न्यायपालिका की लम्बित वाद पर विचार करने की न्यायालयों की शक्ति के बीच कोई विरोधाभास नहीं मिलता है । यह भी मत व्यक्त किया गया कि आदेश 21, नियम 5, उच्चतम न्यायालय नियम और अनुच्छेद 161 के बीच भी कोई विरोधाभास नहीं है अपितु, अनुच्छेद 142 द्वारा माननीय उच्चतम न्यायालय को प्रदत्त व्यापक शक्तियों और अनुच्छेद 161 द्वारा राज्यपाल को प्रदत्त इसी प्रकार की व्यापक शक्तियों के बीच विरोधाभास है । इसलिए, यह सुझाव देना भ्रामक होगा कि नियम का अनुपालन अनावश्यक हो गया है क्योंकि अनुच्छेद 161 के अधीन उच्चतर शक्ति का राज्यपाल द्वारा प्रयोग किया गया है और इसलिए, राज्यपाल द्वारा पारित आदेश के आमुख में ही नियम के अनुपालन की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है । पैरा 25 में निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया था :–

"जहां राज्यपाल ने अनुच्छेद 161 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए दोषसिद्ध व्यक्ति के दंडादेश का निलम्बन मंजूर करते हुए आदेश पारित किया है, इस आधार पर कि वह माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष एक अपील फाइल करना चाहता है तो ऐसा आदेश तभी प्रवर्तित हो सकता है जब कि मामला अपील की विशेष इजाजत याचिका फाइल करने पर माननीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीन हो गया है । ऐसी याचिका फाइल करने के पश्चात् यह माननीय उच्चतम न्यायालय पर निर्भर करता है कि वह कब अपनी ओर से या तो आदेश XXI के नियम 5 को लागू करे या उस नियम के प्रवर्तन से याची को छूट प्रदान कर दे । यह माननीय उच्चतम न्यायालय पर निर्भर करता है कि वह ऐसा आदेश पारित करे जैसा वह ठीक समझता है कि क्या याची की जमानत मंजूर करना चाहिए या उसे दंडादेश के लिए अभ्यर्पण करना चाहिए या ऐसा आदेश या

अन्य आदेश पारित करना चाहिए जैसा वह मामले की सभी परिस्थितियों में ठीक समझता है । इसका अभिप्राय यह है कि विशेष इजाजत याचिका के लिए याची को आदेश XXI के नियम 5, उच्चतम न्यायालय नियम के प्रवर्तन से छूट प्रदान नहीं की जा सकती है, इस कारण से कि अनुच्छेद 161 के अधीन राज्यपाल द्वारा दंडादेश के निलम्बन का आदेश पारित किया गया है ।"

24. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि राज्यपाल द्वारा पारित दंडादेश के निलम्बन के आदेश तथा माननीय उच्चतम न्यायालय नियम के आदेश XXI के नियम 5 के अधीन निहित शक्तियों से संबंधित प्रश्न यह है कि क्या याची को जमानत मंजूर किया जाना चाहिए अथवा उसे अपने दंडादेश के लिए अभ्यर्पण करना चाहिए और यह अभिनिर्धारित किया गया कि याची को उच्चतम न्यायालय नियम के आदेश XXI के नियम 5 के प्रवर्तन से छूट नहीं दी जा सकती क्योंकि दंडादेश के निलम्बन का आदेश राज्यपाल द्वारा संविधान, 1950 के अनुच्छेद 161 के अधीन पारित किया गया था ।

25. मैं, कुछ उन निर्णयज विधियों को भी निर्दिष्ट कर सकता हूं जो वर्तमान चर्चा के लिए सुसंगत हैं । **सतपाल और एक अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय के प्रति निर्देश किया जा सकता है जिसमें माननीय न्यायाधीशों द्वारा संविधान, 1950 के अनुच्छेद 161 के उपबंधों तथा दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 432 के उपबंधों पर विचार किया गया और इन उपबंधों पर विचार करते हुए निर्णय के पैरा 4, 6 और 8 में निम्नलिखित मताभिव्यक्तियां की गईं :–

"अनुच्छेद 161 के अधीन क्षमादान मंजूर करने की शक्ति अत्यधिक व्यापक है और इसे किसी परिसीमा में अन्तर्विष्ट नहीं किया जा सकता है जैसे किस समय पर और किस अवसर पर और किन परिस्थितियों में उक्त शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है । किन्तु, संविधान, 1950 द्वारा राज्यपाल को प्रदत्त संवैधानिक शक्ति होने के नाते उक्त शक्ति कतिपय सीमित आधारों पर न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन हैं । इसलिए, न्यायालय संविधान, 1950 के अनुच्छेद 161 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्यपाल द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने में न्यायोचित होगा यदि यह पाया जाता है कि राज्यपाल ने सरकार की सलाह के बिना स्वयमेव ही

---

[1] ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 1702.

शक्ति का प्रयोग किया है या राज्यपाल ने ऐसी शक्ति का प्रयोग करने में अधिकारिता का अतिक्रमण किया है या यह सिद्ध होता है कि राज्यपाल ने बिना विवेक का प्रयोग किए आदेश पारित किया है या प्रश्नगत आदेश दुर्भावनापूर्ण है या राज्यपाल ने कुछ असंगत विचार के आधार पर आदेश पारित किया है ।

जब एक अभियुक्त हत्या के घृणित अपराध से सिद्धदोष किया जाता है और उसे आजीवन कारावास से दंडादिष्ट किया जाता है तो प्राधिकारी जिसे क्षमादान प्रदान करने की शक्ति और संविधान, 1950 के अनुच्छेद 161 के अधीन दंडादेश का परिहार करने की शक्ति प्रदत्त की गई है, तो उसे उक्त दोषसिद्धि के अधीन वस्तुतः भोगे जाने वाले दंडादेश की अवधि के साथ ही उसके आचरण और व्यवहार के बारे में जानकारी होनी चाहिए जब वह दंडादेश भोग रहा था जिसे इस शक्ति का प्रयोग करते हुए सम्पूर्णतः विचार में लेना चाहिए । ऐसे तात्विक तथ्यों की जानकारी नहीं होने से क्षमादान मंजूर करने का आदेश मनमाना और असंगत होगा । वर्तमान मामले में, दंडादेश के अनवसित अवधि का परिहार करते हुए क्षमादान मंजूर करने का आदेश अभियुक्त द्वारा दंडादेश भोगने के लिए अभ्यर्पित करने के पूर्व पारित किया गया था । किन्तु आदेश में यह उल्लिखित था कि अभियुक्त को जेल में निरुद्ध रखा जाए । सरकार को इस बात की जानकारी नहीं थी कि वस्तुतः कुल कितनी अवधि का दंडादेश अभियुक्त भोगेगा और क्या कोई दंडादेश भोग चुका है । अभिलेख स्पष्ट परिदृश्य दर्शित नहीं करते थे जिसमें फाइल प्रक्रिया में थी और प्राधिकारियों द्वारा क्षमादान मंजूर करने की शक्ति का प्रयोग करने में अप्रायिक हित और उत्साह दर्शित किया गया था । इससे मात्र अप्रतिरोध्य रूप से यही निष्कर्ष निकलता है कि राज्यपाल ने अभिलेख की सामग्रियां में अपना विवेक लागू नहीं किया और न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि और दंडादेश को समाप्त करते हुए कैदी को छोड़े जाने का आदेश तकनीकी रूप से पारित किया । राज्यपाल द्वारा पारित क्षमादान मंजूर करने का आदेश अपास्त किए जाने योग्य है ।"

26. **हरियाणा राज्य और अन्य** बनाम **जगदीश**[1] वाले मामले में, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 72 और 161 के उपबंधों के प्रति निर्देश

---

[1] (2010) 4 एस. सी. सी. 216.

किया गया था और यह मत व्यक्त किया गया कि दोषसिद्धि का अधिकार इस सीमा तक सीमित है कि उसके मामले पर सुसंगत नियमों आदि के अनुसार विचार किया जाए । वह अधिकार के रूप में समयपूर्व छोड़े जाने का दावा नहीं कर सकता है ।

27. **स्वर्ण सिंह** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय से यह दर्शित होता है कि निर्णय के पैरा 8, 12 और 13 में निम्नलिखित मताभिव्यक्तियां की गई थीं जो सुसंगत हैं और नीचे प्रस्तुत हैं :–

> "प्रत्यर्थी राज्य विधानसभा का एक एम. एल. ए. था जब उसे हत्या के अपराध के लिए सिद्धदोष किया गया था । किन्तु दो वर्षों से भी कम अवधि के भीतर वह कारागार से बाहर आने में सफल हो गया क्योंकि उत्तर प्रदेश के राज्यपाल ने उसके आजीवन कारावास की शेष लम्बी अवधि का परिहार मंजूर कर लिया था । मृतक के पुत्र ने राज्यपाल की पूर्वोक्त कार्रवाई को चुनौती देते हुए इलाहाबाद उच्च न्यायालय में रिट याचिका फाइल की । उच्च न्यायालय की एक खंड न्यायपीठ जिसने उसकी खारिज रिट याचिका की सुनवाई की थी, ने यह विनिश्चय किया कि संविधान, 1950 के अनुच्छेद 161 के अधीन राज्यपाल का विनिश्चय न्यायोचित नहीं है । विशेष इजाजत याचिका द्वारा अपील मंजूर करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि –
>
> वर्तमान मामले में, राज्यपाल को कैदी से संबंधित उन कतिपय अत्यावश्यक तथ्यों को नहीं बताया गया था जिसमें वह गंभीर अपराधों के अन्य पांच आपराधिक मामलों में अन्तर्ग्रस्त था, उसकी पूर्ववर्ती दया याचिका की नामंजूरी, जिसे उन्हीं आधारों पर फाइल किया गया था, में जेल प्राधिकारियों ने यह रिपोर्ट की थी कि जेल के अन्दर उसका आचरण संतोषजनक नहीं था और दो वर्ष पांच माह की अवधि तक वह तथाकथित रूप से जेल में रहा था, वस्तुतः उस अवधि के सारवान् भाग के दौरान भी वह पेरोल पर रहा था ।
>
> माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित या सुस्थापित विधिक प्रास्थिति को ध्यान में रखते हुए संविधान, 1950 के अनुच्छेद 161 के अधीन राज्यपाल द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने की शक्ति नहीं होती है । यदि ऐसी शक्ति का प्रयोग मनमाने तौर पर

---

[1] (1998) 4 एस. सी. सी. 75.

दुर्भावना या संविधानवाद के बेहतर मापदंडों के पूर्णतया उल्लंघन में किया जाता है तो ऐसा गौण आदेश विधि का अनुमोदन प्राप्त नहीं कर सकता है और ऐसे मामलों में न्यायिक हस्तक्षेप अपेक्षित हो जाता है ।

जब राज्यपाल को तात्विक तथ्यों की जानकारी नहीं दी जाती है तो राज्यपाल ऐसी शक्ति का ऋजु और ठीक तरीके से प्रयोग करने के अवसर से प्रकटतः वंचित हो जाता है । उल्टे, ऐसे आदेश पर मनमानेपन का धब्बा भी लग जाता है । राज्यपाल तभी ऐसा आदेश पारित कर सकता था जब उसे उपर्युक्त तथ्यों और सामग्रियों से अवगत कराया जाता, क्योंकि न्यायालय उन आधारों के गुणागुण पर विचार नहीं कर सकता है जिन पर विचार करते हुए, राज्यपाल ने उक्त शक्ति का प्रयोग करने का विनिश्चय लिया था ।

राज्यपाल का आदेश इस निर्देश के साथ अभिखंडित किया जाता है कि कैदी की याचिका पर उन सामग्रियों के प्रकाश में पुनः विचार किया जाए जिन पर पहले कोई जानकारी नहीं दी गई थी ।"

28. 2011 की सिविल अपील सं. 2058, शीर्षक **नारायण दत्त और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय से यह दर्शित होता है कि राज्यपाल की क्षमादान और उनकी शक्तियों का प्रश्न उपर्युक्त मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के विचाराधीन था । 8 अभियुक्त व्यक्तियों को भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 148, 302/149, 323, 149, 324, 325 और 326 के अधीन तारीख 28 मार्च, 2005 के निर्णय द्वारा सिद्धदोष किया गया था । पंजाब के राज्यपाल ने संविधान, 1950 के अनुच्छेद 161 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए तारीख 24 जुलाई, 2007 के आदेश द्वारा अभियुक्तों में से 3 अभियुक्तों को क्षमादान मंजूर कर दिया था, जिसे चुनौती दी गई थी । माननीय न्यायाधीशों के समक्ष पैरा 16 में यथाउल्लिखित निम्नलिखित प्रश्न विचार के लिए उद्भूत हुआ था :–

"क. क्या अनुच्छेद 161 के अधीन शक्ति न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन है और यदि हां तो किस सीमा तक ?

ख. क्या राज्यपाल ने अनुच्छेद 161 के अधीन अपनी क्षमादान

---

[1] 2011 की सिविल अपील सं. 2058.

की शक्ति का सही तौर पर प्रयोग किया है ?"

29. माननीय राज्यपाल द्वारा सविस्तार आदेश पारित किया गया था जिसे माननीय न्यायाधीशों द्वारा पैरा 17, 18 और 20 में निर्दिष्ट किया गया है । माननीय न्यायाधीशों द्वारा विभिन्न अन्य विनिश्चयों को निर्दिष्ट करते हुए पैरा 24, 25, 27, 28, 29, 31 और 32 में निम्नलिखित मताभिव्यक्तियां की गई थीं :–

"उसी प्रश्न पर केहर सिंह और एक अन्य **बनाम** भारत संघ और एक अन्य (ए. आई. आर. 1989 एस. सी. 653) वाले मामले में पश्चात्वर्ती सांविधानिक न्यायपीठ के विनिश्चय में इस न्यायालय ने एक्स पार्टी विलियम्स वेल्स (1854-57) 15 ला एडिसन 421 में यूनाइटेड स्टेट्स सुप्रीम कोर्ट ने इस शक्ति के प्रयोग करने की संवीक्षा के लिए अपनी शक्ति को उद्धृत किया और यह इंगित किया कि इसका प्रयोग 'विशिष्टतया जब किसी मामले की परिस्थितियों से ऐसी अनिश्चितता प्रकट होती है जो इसे संदेहपूर्ण बनाती है यदि किसी अपराधी की दोषसिद्धि होती है या जब उनसे यह दर्शित होता है कि दंडात्मक न्याय की बाध्यता से सबक लिए बिना दंड का न्यूनीकरण किया जा रहा है' । खंड न्यायपीठ ने एक्स पार्टी फिलिप्स ग्रासमैन (1924) 267 यू. एस. 87 वाले मामले में मुख्य न्यायाधीश तफ्त को भी उद्धृत किया है जिसमें विद्वान् मुख्य न्यायाधीश ने निम्नलिखित उद्धृत किया था –

'कार्यपालिका क्षमादान असम्यक् परेशानी से अनुतोष प्रदान करने अथवा दांडिक न्याय के प्रवर्तन या लागू करने में प्रकट भूल से अनुतोष देने के लिए अस्तित्व में होता है । न्यायालयों द्वारा न्याय प्रशासन हमेशा ही आवश्यक रूप से बुद्धिमतापूर्ण नहीं होता है अथवा निश्चित तौर पर उन परिस्थितियों पर विचार नहीं किया जा सकता है जिनसे समुचित तौर पर दोषी का न्यूनीकरण किया जा सके । उपचार देने के लिए एक लोकप्रिय सरकार के साथ ही राजतंत्र, जिसमें न्यायालयों की शक्ति के मुकाबले कुछ अन्य प्राधिकार निहित होते हैं, का हमेशा ही यह विचार होना चाहिए कि वे विशिष्ट दांडिक निर्णय में सुधार करें या उससे बचें .....।'

25. खंड न्यायपीठ ने अनुच्छेद 72 के अधीन माननीय राष्ट्रपति

की शक्ति की प्रकृति के बारे में विचार करते हुए यह कथन किया कि अनुच्छेद 72 के अधीन माननीय राष्ट्रपति दांडिक मामले के अभिलेख पर के साक्ष्य की संवीक्षा कर सकता है और न्यायालय से भिन्न निष्कर्ष निकाल सकता है । ऐसा करते हुए राष्ट्रपति न्यायिक अभिलेख में संशोधन या उपातंरण या अधिक्रमण नहीं कर सकता है । न्यायिक अभिलेख अक्षुण्ण और अबाधित बना रहता है । राष्ट्रपति उससे पूर्णतया भिन्न स्तर पर कार्य करता है जिसमें न्यायालय कार्य करता है । वह सांविधानिक शक्तियों के अधीन कार्य करता है जिसकी प्रकृति संपूर्णतः न्यायिक शक्तियों से भिन्न होती है और यह इसका विस्तार करने के बारे में नहीं हो सकता है । खंड न्यायपीठ ने यू. एस. **बनाम** बेन्ज (1930) 75 ला एडिसन 354 वाले मामले में न्यायमूर्ति सदरलेंड के फार्मूलों का अनुमोदन के साथ उद्धृत किया है जिसमें विद्वान् न्यायाधीश ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया था –

> 'दंडादेशों पर न्यायिक शक्ति और कार्यपालिक शक्ति में वस्तुतः विभेद है । निर्णय देना एक न्यायिक कार्य है । और निर्णय को प्रभाव देना एक कार्यपालिका कार्य है । क्षमादान के कार्य द्वारा दंडादेश को कम करना एक कार्यपालिका शक्ति है जिसमें निर्णय का प्रवर्तन कम किया जाता है किन्तु निर्णय में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता है ।'

27. स्वर्ण सिंह **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य (ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 2006) वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि इस न्यायालय के पास संविधान, 1950 के अनुच्छेद 161 के अधीन राज्यपाल द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने की कोई शक्ति नहीं है । यदि ऐसी शक्ति का प्रयोग मनमाने तौर पर दुर्भावना या संविधानवाद के बेहतर मापदंडों के पूर्णतया उल्लंघन में किया जाता है तो ऐसा गौण आदेश विधि का अनुमोदन प्राप्त नहीं कर सकता है और ऐसे मामलों में न्यायिक हस्तक्षेप अपेक्षित हो जाता है ।

28. पुनः सतपाल और एक अन्य **बनाम** हरियाणा राज्य और अन्य (ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 1702) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 161 के अधीन क्षमादान मंजूर करने की शक्ति अत्यधिक व्यापक है और इसे किसी ऐसी अवधि तथा अवसर की परिसीमाओं में सीमित नहीं किया जा

सकता है जिसमें और जिन परिस्थितियों के अधीन इसका प्रयोग किया जाता है । चूंकि यह शक्ति एक सांविधानिक शक्ति है इसलिए यह निम्नलिखित आधारों पर न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन है –

(क) यदि यह पाया जाता है कि राज्यपाल ने सरकार की सलाह लिए बिना स्वयं शक्ति का प्रयोग किया है,

(ख) यदि राज्यपाल ने उक्त शक्ति का प्रयोग करने में अपनी अधिकारिता का अतिक्रमण किया है,

(ग) यदि राज्यपाल ने अपना विवेक लागू किए बिना आदेश पारित किया है,

(ङ) राज्यपाल का आदेश दुर्भावनापूर्ण है, या

(च) राज्यपाल का आदेश कुछ बाह्य विचारों पर पारित किया गया है ।

29. आगे, यदि राज्यपाल द्वारा सिद्धदोष व्यक्ति द्वारा भोगे गए अवधि, दंडादेश भोगते समय उसके आचरण और व्यवहार और अन्य ऐसे तात्विक बातों के बारे में साधारण जानकारी के बिना आदेश पारित किया गया है तो अनुच्छेद 161 के अधीन राज्यपाल द्वारा पारित ऐसा आदेश मनमाना और असंगत होगा ।

31. इपुरु सुधाकर और एक अन्य **बनाम** आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य (ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 3385) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि यह सुस्थिर है कि राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा क्षमादान की शक्ति का प्रयोग या अप्रयोग न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति से उन्मुक्त नहीं है और कतिपय मामलों में सीमित न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति उपलब्ध है ।

32. न्यायमूर्ति पसायत ने उन आधारों पर निर्णय दिया है जिन पर अनुच्छेद 72 और अनुच्छेद 161 के अधीन पारित आदेश का न्यायिक पुनर्विलोकन किया जा सकता है । वे आधार निम्नलिखित हैं –

(क) कि आदेश बिना विवेक लागू किए पारित किया गया है,

(ख) कि आदेश दुर्भावनापूर्ण है,

(ग) कि आदेश बाह्य या पूर्णतया असंगत विचारों पर पारित

किया गया है,

(घ) कि सुसंगत सामग्रियों को विचार से दूर रखा गया है,

(ङ) कि आदेश मनमानापन से ग्रसित है ।''

30. माननीय उच्चतम न्यायालय के इन सभी निर्णयों में राष्ट्रपति और राज्यपाल में निहित क्षमादान की शक्तियों को निर्दिष्ट किया गया है और यह मताभिव्यक्ति की गई थी कि किन परिस्थितियों के अधीन इन शक्तियों के प्रयोग को न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जा सकती है । तथापि, ऐसी क्षमादान मंजूर करने की शक्ति के प्रभाव के बारे में कोई विनिर्दिष्ट विधि निर्दिष्ट नहीं की गई थी और इसलिए, उपर्युक्त निर्दिष्ट निर्णय के पैरा 30 में की गई मताभिव्यक्तियों के प्रति निर्देश किया गया । इसलिए, पैरा 30 में निकाले गए निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, मैं यह अभिनिर्धारित नहीं करता हूं कि राजा द्वारा मंजूर क्षमादान की शक्ति से दंडादेश समाप्त किया जा सकता है जैसा कि अमेरिकन न्यायालयों की मताभिव्यक्तियों से निष्कर्ष निकाला जा सकता है ।

31. **नॉट** बनाम **यूनाइटेड स्टेट्स**[1] वाले मामले में अमेरिकन न्यायालयों के विनिश्चय के प्रति मेरा ध्यान आकर्षित किया गया है जिसमें निम्नलिखित मताभिव्यक्तियां की गई थीं :–

> ''क्षमादान एक अनुग्रह का कार्य है जिसके द्वारा एक अपराधी को उसके अपराध के परिणामों से निर्मुक्त किया जाता है जहां तक कि ऐसी निर्मुक्ति व्यवहार्य होती है और यह क्षमादान प्रदान करने वाली शक्ति के नियंत्रण के भीतर होती है या अधिकारियों के निर्देशाधीन होती है । यह अपराध द्वारा अधिरोपित सभी निर्योग्यताओं से अपराधी को निर्मुक्त करती है और उसके सभी सिविल अधिकारों को प्रतिस्थापित करती है । विधि को ध्यान में रखते हुए, यह उस अपराध को वहां तक छिपा देती है जहां तक कि इसके पश्चात्, यह उसके विधिक अधिकारों के प्रत्याख्यान को अवरुद्ध करने से उसे अभ्यारोपित नहीं कर सकती है ।''

32. यद्यपि, जैसा कि उपर्युक्त चर्चा की गई है माननीय न्यायमूर्ति कपाड़िया की मताभिव्यक्तियों को निर्दिष्ट करते हुए कि यह उस दोषसिद्धि के प्रभाव को समाप्त नहीं करती है, जो वर्तमान मामले में, सेशन

---

[1] (1877) 24 ला एडिसन 442.

न्यायाधीश के न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है और उच्च न्यायालय तथा माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा कायम रखा गया है । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उस याची की निर्दोषिता का प्रश्न ही नहीं उठता है जिसे दोषी अभिनिर्धारित किया गया है और क्षमादान मंजूर करते हुए उसके द्वारा भोगे नहीं गए दंडादेश के वास्तविक प्रभाव को माननीय राज्यपाल द्वारा परिहार नहीं किया गया है ।

33. इसलिए, माननीय उच्चतम न्यायालय की उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों के परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि जैसा कि उपर्युक्त मामले में समवर्ती राय देते हुए माननीय न्यायमूर्ति कपाड़िया द्वारा मताभिव्यक्ति की गई है कि क्षमादान मंजूर करने को दोषसिद्धि के निर्णय के उलटने के अर्थ में नहीं माना जा सकता है बजाय इसके कि यह एक कार्यपालिका कार्रवाई है जिसके द्वारा अपराध के दंडादेश को कम या अपास्त किया जाता है । यह प्रतिवादी के दोषी या निर्दोषी होने का उल्लेख किए बिना दोषसिद्धि के प्रभाव को दूर करता है । यह भी मत व्यक्त किया गया कि यह अवधारित करने में नियंत्रणकारी कारक है कि क्या परमाधिकार की शक्ति का प्रयोग न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन है यह इसका स्रोत नहीं है अपितु यह इसकी विषयवस्तु है ।

34. इसलिए, यह स्पष्ट है कि वर्तमान मामले में, राज्यपाल के आदेश में क्षमादान मंजूर करते समय कोई विनिर्दिष्ट कारण नहीं दिया गया है । क्षमादान की शक्तियां माननीय राज्यपाल में निहित हैं किन्तु इनका प्रयोग राज्य सरकार की सिफारिशों तथा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों एवं उन विचारों पर भी, जिनका माननीय राज्यपाल के लिए क्षमादान मंजूर करते समय महत्व होता है, के आधार पर किया जाता है । इन विचारों में वे सभी अभिकथन भी सम्मिलित होते हैं कि याची अपराध में अन्तर्ग्रस्त था कि वह निर्दोष था, इसमें उसकी शारीरिक दशा, विकृत स्वास्थ्य या उसके कुटुम्ब की परिस्थितियां और कई अन्य कारण हो सकते हैं जिन पर इन शक्तियों का प्रयोग करते हुए माननीय राज्यपाल द्वारा विचार में लिया जा सकता है । यह न्यायालय शक्तियों की सीमा को परिसीमित करने के प्रश्न पर विचार नहीं कर सकता है अपितु, इस प्रश्न पर विचार कर सकता है कि क्षमादान मंजूर करने का प्रभाव क्या है, क्या इससे याची द्वारा कारित अपराध समाप्त होता है और इसका प्रभाव क्या है । मेरी राय में, वर्तमान परिस्थितियों में मात्र इंग्लिश न्यायालयों या यू. एस. न्यायालयों के निर्णयों पर ही एकमात्र रूप से अवलंब नहीं लिया जा सकता क्योंकि विधि

परिवर्तनशील है और समय-समय पर परिवर्तित होती रहती है, विचार जो न्यायालय के लिए भारपूर्ण हैं वह यह है कि राज्यपाल द्वारा क्षमादान मंजूर करने का प्रभाव क्या है । क्षमादान मंजूर करने का प्रभाव यह है कि याची को उस पर अधिरोपित अनभोगे दंडादेश को आगे भोगने की आवश्यकता नहीं रह गई है । किन्तु, इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि यह अपराध के उस दंडादेश को भी अपास्त कर दिया है जो उसने किया है अपितु, याची उस दंडादेश को अब नहीं भोगेगा जो उन आदेशों को ध्यान में रखते हुए भोगा जाना था जिसे माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा भी पुष्ट कर दिया गया था । वस्तुतः, भोगे गए दंडादेश का ही क्षमादान के माध्यम से मुजरा किया गया है न कि याची द्वारा किए गए अपराध और उसके स्वभाविक परिणाम का ।

35. मेरे सुविचारित राय में, यह तथ्य कि याची को उस हत्या के लिए सिद्धदोष किया गया था जिसकी दोषसिद्धि माननीय उच्चतम न्यायालय तक कायम रखी गई थी और क्षमादान के परिणामस्वरूप उसे उस पर अधिरोपित शेष दंडादेश को भोगने की आवश्यकता नहीं रह गई है किन्तु इससे उस पर अधिरोपित दोषसिद्धि को अपास्त करने पर प्रभाव नहीं पड़ता है और जो उच्चतर न्यायालय तक कायम रखा गया है । इसलिए, यह विभाग द्वारा अपने अधिकार के भीतर है कि वह फायदों को मंजूर नहीं करे क्योंकि वह अपराध के लिए सिद्धदोष किया गया था और उपर्युक्त उल्लिखित रूप से भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन दंड के अलावा अन्य अपराधों के लिए दंडादेशों को पहले ही भोग चुका था । इसलिए, मेरी राय में, आक्षेपित आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य नहीं है ।

36. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, तद्नुसार, मैं यह अभिनिर्धारित करता हूं कि याची द्वारा फाइल याचिका में कोई गुणागुण नहीं है जिसे खारिज किया जाता है साथ ही लम्बित आवेदन/आवेदनों, यदि कोई हो, को भी खारिज किया जाता है ।

तद्नुसार, रिट याचिका खारिज की गई ।

क.